त्रिपुरी

(विदिशा, पद्मावती और बाघ का संक्षिप्त विवेचन)



लेखक
श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

प्रकाशक
विद्यामंदिर-प्रकाशन
मुरार (मध्यभारत)

प्रथम संस्करण
वि० सं० २०१०
मूल्य २)

मुद्रक
नवप्रभात प्रेस
सराफा, ग्वालियर

प्रस्तावना

भारत के गौरवपूर्ण इतिहास में मध्यभारत का महत्वपूर्ण भाग रहा है, किन्तु खोज, अनुसंधान एवं उत्खनन के अभाव के कारण मध्यभारत के प्राचीन ऐतिहासिक नगरों, स्थानों एवं अन्य सामग्री आदि के सम्बन्ध में पूरी जानकारी इस समय उपलब्ध नहीं है। इस अभाव की पूर्ति करने की दृष्टि से श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने "त्रिपुरी" में विदिशा, पद्मावती और बाघ के इतिहास पर जो प्रकाश डाला है तथा उन स्थानों का आपसी सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है वह सराहनीय है।

मेरी सम्मति में मध्यभारत के अन्य सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों, उदाहरणार्थ "अवंतिका, दशपुर, ग्वालियर, महेश्वर" आदि पर भी शोध की नितान्त आवश्यकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण लेखक को उत्साहित कर वर्तमान पुस्तक की उपयोगिता को ही सार्थक नहीं करेंगे वरन् इस प्रकार के प्रयासों के लिये भी अग्रसर करेंगे।

इन्दौर,
११ मई, १९५४

सीताराम म० जाजू

भूमिका

मेरा विचार मध्यभारत के कुछ प्राचीन नगरों पर विस्तृत पुस्तक लिखने का था। समय समय पर विदिशा पद्मावती और बाघ के विषय में कुछ लेख लिखे भी जो सरस्वती मधुरिमा विक्रम आदि पत्रों में प्रकाशित हुए। अन्य नगरों के विषय में लिखने का अवसर और अवकाश अभी नहीं मिल सका। अतएव इन तीन स्थलों के विषय में लिखे गए इन लेखों को ही पुनः मुद्रित कर 'त्रिपुरी' के नाम से हिन्दी संसार की सेवा में अर्पित कर रहा हूँ। यदि कभी समय मिला और परिस्थितियां अनुकूल हुईं तो उज्जयिनी, दशपुर, ग्वालियर और माहिष्मती पर लिखकर मध्यभारत की इन महान सप्त पुरियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करूंगा। अभी इतने से ही संतोष है।

इन प्राचीन नगरों के अवशेषों का अब तक बहुत कुछ अध्ययन हो चुका है, बहुत कुछ होना शेष है। मैंने पिछली समस्त प्राप्त सामग्री का उपयोग किया है, परन्तु उन पर विचार करने का दृष्टिकोण एवं शैली मेरी अपनी है। मेरे इन लेखों से इतिहास का ज्ञान कितना आगे बढ़ा है यह मेरे कहने की बात नहीं है। जो यह कहने के अधिकारी हैं वे कहेंगे और आगे कभी मेरे परिश्रम का मूल्यांकन होगा, यह आशा लगाए बैठा हूं।

बाघ गुहाओं के विषय में हिन्दी और अन्य विदेशी भाषाओं में नवीन खोजों के आधार पर स्वतन्त्र पुस्तक की आवश्यकता हैं। यह मध्यभारत राज्य द्वारा पूरी होनी चाहिए। अब तक के प्रकाशन सब दृष्टियों से पुराने पड़ गये हैं। बाघ-गुहा-समूह के निर्माण काल के विषय में ही इस पुस्तक में मैंने नवीन स्थापना करने का प्रयास किया है।

पद्मावती के स्थल पर उत्खनन और अन्वेपण हमारे राष्ट्रीय कर्त्तव्य हैं जिनकी ओर ध्यान देने की अत्यधिक आवश्यकता है। यह

चित्रसूची

विदिशा

प्रारंभिक

मध्यभारत की सीमा ऐसे प्राचीन नगरों के अवशेष से भरी है जहां पर कभी हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्मों के नेता एवं आचार्यों ने अपनी महीयसी प्रतिभा, विद्वत्ता और साधना का प्रकाश दिग्दिगंत में प्रसारित किया था, महाकवियों ने अपनी वरद काव्यवीणा से वीणावादिनी के प्रसाद का प्रसार किया था, प्रसिद्ध व्यापारियों ने अपने काफिले सुदूर देशों में भेजने के लिए जल और स्थल मार्गों के साज सजाए थे तथा संसार के महानतम विजेताओं ने अपनी वीरवाहिनियों को दिग्विजय के लिए सज्जित कर अपनी तलवार की धार की सफल परीक्षा दी थी। इस सीमा में अनेक ऐसे स्थल भी हैं जहां पर भारत की रत्नगर्भा वसुन्धरा की स्वर्ण-राशि लूटने के लिए आनेवाले बर्बर लुटेरों को मुहकी खानी पड़ी थी। एकाधिक बार प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसे प्रसंग आये हैं, जिनमें इस भूमि के वीर पुत्रों ने एकत्रित होकर भारत के सिंहद्वार को अपने बल से धक्का देकर तोड़ने वाले आक्रमणकारियों को मार भगाया था। यहां पर विजयी सिकन्दर के दांत खट्टे करने वाली स्वातन्त्र्य प्रिय मालव जाति ने अन्तिम आश्रय पाया और बहुत समय तक अपने गणतन्त्र को जीवित तथा दृढ़ रखा। भारतीय कला की अनुपम कृतियों का निर्माण भी इस भूमि पर हुआ। उज्जयिनी, विदिशा, पद्मावती, माहिष्मती, कान्तिपुरी, दशपुर एवं तुम्बवन आदि अनेक ऐसे नाम हैं जिन्हें प्राचीन भारतीय इतिहास में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इन नगरों के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत में महान अतीत के निर्माण में इन नगरों के नागरिकों का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

महाकालेश्वर के ज्योतिर्लिंग से विभूषित भगवान कृष्ण की गुरु-भूमि, कालिदास के मेघ को मार्गच्युत करा देने वाली वत्सराज और

विक्रमादित्य की रंगस्थली, अर्थ और धर्म, वैभव और विलास की क्रीड़ा-भूमि विशाला अवन्तिकापुरी का महत्व तो इस प्रदेश में अन्यतम है ही परन्तु पुराणों एवं जैन साहित्य में वर्णित बौद्ध ग्रंथों की वेस्सानगरी-विदिशा का महत्व भी प्राचीन भारत के मानचित्र पर नहीं है। आज के मध्यभारत को एकाधिक राजनीतिज्ञ देने वाला भेलसा इस विदिशा के भग्नावशेषों पर ही खड़ा है। उदयगिरि का कला-मंडप इसी विदिशा का अंग है। आज यह एक संयोग मात्र है कि सांची मध्यभारत की राजनीतिक सीमाओं के बाहर है, यह प्राचीन काल में विदिशा का ही भाग थी। सांस्कृतिक क्षेत्र में राजनीति कितने अकाण्ड कृत्य कर सकती है इसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है। वास्तव में सांस्कृतिक राजनीतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से संपूर्ण भोपाल राज्य ही मध्यभारत का अविभाज्य अंग है तथापि आज वह मध्यभारत से अलग है और प्राचीन विदिशा का एक भाग आज उसके उत्तराधिकारी भेलसा का अंग नहीं रहा। विदिशा का काकनाद पर्वत या काकनाद बोट, अर्वाचीन सांची, अपने मूल नगर से काट दिया गया। संभव है, कभी हमारे राजनीतिज्ञों में इस सांस्कृतिक अनाचार का निराकरण करने की सुबुद्धि जागृत हो और विचारहीन सैनिकों की तलवार द्वारा किए गए इस अंग-भंग को मिटाने का सुयोग प्राप्त हो सके। अस्तु।

प्राचीन विदिशा का विस्तार बहुत अधिक था। वह उस दशार्ण देश की मुख्य नगरी थी, जिसमें बनाने वाली तलवारों की तीक्ष्ण धार की प्रशंसा प्राचीन बौद्ध साहित्य में है। आज का बेस नामक ग्राम, उदय-गिरि पर्वत और सांची उसी के अंग थे। महर्षि जमदग्नि और भगवान् परशुराम भार्गव के त्यक्त शिष्य हैहयों की यहां राजधानी रह चुकी है, रामायण और महाभारत काल में इसका स्थान गौरवपूर्ण रहा है। परम पराक्रमी महाराज शत्रुघ्न के पुत्र की यह नगरी आगे चलकर यादवों की राजधानी बनी। शैशुनाक काल में व्यापारिक महत्व कायम रखकर विदिशा मौर्य, शुंग, नाग एवं गुप्तों के अपूर्व विश्रुत पराक्रमी

की रंगस्थली बनी। यहीं सम्राट अशोक के यौवनकालीन विकल मानस को प्रश्रय मिला और आगे चलकर यहीं के काकनाद बोट पर संसार में शान्ति और अहिंसा द्वारा धर्म विजय का सूत्रपात करने के चिन्हन स्वरूप तथागत गौतम बुद्ध की आराधना के लिए स्तूपों का निर्माण कराया गया। वैदिक काल से भारतीय समाज के नियामक भार्गव ब्राह्मणों के पौरोहित्य में यहीं एक बार पुनः शुंग वंशीय नरेशों ने भागवत धर्म की पुनर्स्थापना कर होलियोडोर और डेमिट्रियस यवनों को भी भागवत धर्म में दीक्षित किया। यहीं जमदग्नि और परशुराम की तेजस्वी परम्परा के संवाहक सुमति भार्गव ने भारतीय समाज का पिछले एक सहस्र वर्ष से नियमन करने वाली मनुस्मृति को वर्तमान रूप दिया एवं रामायण और महाभारत का संपादन किया। यहीं उस प्रबल पराक्रम भागवत धर्म का उद्भव हुआ जिसने भारतीय संस्कृति को नवजीवन प्रदान किया, कला के क्षेत्र में नवीन मान स्थापित किये, और गुप्तकाल के वैभव की नींव डाली। यहीं पर प्रसिद्ध गुप्तवंशीय श्री सम्पन्न और गुण सम्पन्न राजाओं के समृद्धिमान काल में शैव वैष्णव एवं जैन धर्मों के आराधना स्थान, एवं भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला के आगार—उदयगिर पर्वत का संस्कार हुआ।

इस विदिशा नगरी के प्राचीन गौरव पर हम आगे तीन भागों में प्रकाश डालेंगे। पहले भाग में इतिहास में किए गए विदिशा के उल्लेख एकत्रित करेंगे, दूसरे में काव्यों में वर्णित विदिशा के रूप पर प्रकाश डालेंगे तीसरे में विदिशा नगरी के अवशेषों से प्राप्त कुछ सामग्री का विवेचन करेंगे और यहां की प्राचीन कला पर दृष्टिपात करेंगे।

इतिहास में विदिशा

भारतीय अनुश्रुति के अनुसार चन्द्रवंशी पुरूरवा ऐल के वंश में महाप्रतापी राजा ययाति हुआ। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी परन्तु उसने अनेक देशों को जीतकर चक्रवर्ती पद पाया। उसके वंश की एक शाखा हैहय नाम से प्रसिद्ध हुई। जो प्रदेश आज मालवा कहलाता है उसे अत्यन्त प्राचीनकाल में अवन्ति प्रदेश कहते थे। इस अवन्ति प्रदेश पर हैहयों का शासन था और विदिशा उसकी राजधानी थी। हैहय वंश बहुत दिनों तक प्रतापशाली रहा और इस प्रकार इतिहास के अरुणोदय में ही विदिशा की प्रतिष्ठा के दर्शन हुए। यह उस समय की बात है जब कि पुराण-प्रसिद्ध अवन्तिकापुरी अवन्ति-प्रदेश की मुख्य नगरी न बनी थी। ययाति ऐल के वंशजों के प्रभुत्व के समय में विदिशा समृद्ध रूप में थी।

अयोध्या के सूर्यवंश का जब बोलबाला हुआ तब सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज रामचन्द्र ने सम्पूर्ण भारत को अपने शासन में ले लिया था, उस समय भी विदिशा का गौरव सुरक्षित रहा। उसका शासन शत्रुघ्न करते थे। शत्रुघ्न के पश्चात अवन्ति-प्रदेश उनके छोटे पुत्र को मिला। उस समय भी इसकी राजधानी विदिशा ही थी।

महाभारत युद्ध से पूर्व, ज्ञात होता है कि अवन्ति-प्रदेश वर्तमान उज्जैन के आसपास का ही नाम रह गया और विदिशा के चारों ओर का प्रदेश दशार्ण नाम से प्रख्यात हुआ। उस समय हैहय वंश भी केवल माहिष्मती तक ही सीमित रह गया था और दशार्ण पर यादवों का अधिकार था। यह लोग महाभारत युद्ध में पाण्डवों की ओर से लड़े थे।

महाभारत युद्ध के पश्चात तथा मौर्यवंश के पूर्व विदिशा का राजनैतिक महत्व चला गया ज्ञात होता है। उस समय जो प्रधान जनपद थे उनमें अवन्ति सबसे अधिक शक्तिशाली जनपदो में था। इसी की सीमा में दशार्ण (विदिशा) एवं महिष्मती सम्मिलित होगए थे। कौशल मगध

और अवन्ति की राजनीति में विदिशा का गौरव छुप अवश्य गया था, परन्तु उसके व्यापारिक महत्व में कोई कमी नहीं आई थी। अवन्ति से मगध जाने वाले मार्ग पर विदिशा का स्थान व्यापारिक एवं युद्ध की दृष्टि से प्रधान था। साथ ही बौद्ध धर्म के यह मुख्य केन्द्रों में थी।

मौर्य साम्राज्य स्थापित होने पर विदिशा का फिर राजा करण से महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुआ। जब मौर्य सम्राट की ओर से युवराज अशोक अपने यौवन काल में अवन्ति प्रदेश के शासक बनकर आये तो वे विदिशा भी गए। यहां वे देवी नाम की श्रेष्ठि कन्या पर अनुरक्त हो गये, उनसे उनके संघमित्रा नामक एक कन्या हुई। जब अशोक सम्राट बने तब भी देवी विदिशा में ही रही। जिससे ज्ञात होता है कि सम्राट अशोक का विदिशा आगमन होता रहा होगा। मौर्य काल में विदिशा समृद्ध स्थिति में थी यह तो उस समय के अवशेषों से ज्ञात होता है।

विदिशा के राजनीतिक महत्व का श्रेष्ठतम काल ई० पू० दूसरी शताब्दी में प्रारम्भ हुआ जब प्रबल प्रतापी पुष्यमित्र शुंग ने अत्याचारी एवं दुर्बल अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को लगभग १८४ ई० पू० में मारकर मगध का राज्य अपने हाथ में ले लिया। शुंगों का निवास स्थान दशार्ण देश की राजधानी यही विदिशा थी। यद्यपि पुष्यमित्र ने अपने प्रबल प्रताप से भारत के बहुत बड़े भाग को अपने आधीन कर लिया था परन्तु विदिशा से अपने निकट सम्बन्ध के प्रमाण स्वरूप अपने बेटे अग्निमित्र को अपनी ओर से उसका शासक बनाया।

शुंगों के राज्य में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ, पुष्यमित्र ने पुनः प्राचीन यज्ञ एवं भागवत धर्म का प्रचार किया। विदिशा के पास ही गोनर्द नामक स्थान के निवासी, पाणिनि की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखने वाले पतञ्जलि भी उनके यज्ञ में पुरोहित बने थे। पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेघ और राजसूय यज्ञ किए थे। विदिशा में अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण हुआ। इन मंदिरों का शुंगवंशीय राजा भागभद्र ने निर्माण कराया।

शुंगों का प्रताप उस समय बहुत अधिक था। तक्षशिला के यवन राजा अन्तलिकित (Antialkides) ने शुंग राजा भागभद्र की राज सभा में हेलियोडोरस नामक राजदूत भेजा था। हेलियोडोरस ने विदिशा के विष्णु मंदिर में गरुड़ध्वज का निर्माण कराकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। इससे जहां शुंगों का राजनीतिक प्रभाव प्रकट होता है, वहां उनके द्वारा पुनर्स्थापित भागवत धर्म की सार्वभौमता भी प्रकट होती है। वह ग्रीक राजदूत स्वयं भागवत धर्म में दीक्षित हो गया था। दूसरे एक डिमिस्ट्रियम ग्रीक ने यज्ञ कराया था। इतना ही नहीं शुंगों के इस प्रयास का परिणाम आगे यह भी हुआ कि उस काल के परम प्रतापी जैन सम्राट खारवेल तक ने राजसूय यज्ञ किया और इस सब नवजागृति का केन्द्र विदिशा थी। यहां के उत्खनन से प्राप्त हुए यज्ञ कुण्डों के अवशेष आज भी उस युग की गाथा कह रहे हैं। ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र एवं उनके वंशजों ने जो अश्वमेधादि बड़े बड़े वैदिक यज्ञ किए, उनमें से एक-दो अवश्य ही विदिशा में हुए थे। साधारण यज्ञ तो निश्चय ही अनेक हुए।

शुंग वंश के पश्चात विदिशा पर भारशिव नागों का प्रभुत्व हुआ। शुंग वंश का जैसा प्रताप और ऐश्वर्य था, उससे अधिक इन भारशिव नागों का था। कुषाण एवं अन्य विदेशी शक्तियों के अत्याचार पूर्ण शासन से भारतवर्ष की रक्षा कर उन्होंने हिन्दू धर्म की पूर्ण स्थापना की। ये शिव के परम आराधक थे और शिव की मूर्ति साथ रखते थे। इसीलिए उनका नाम भारशिव पड़ा। नागों ने गंगा किनारे काशी में दस बार अश्वमेध यज्ञ किये। जिस घाट पर ये दस अश्वमेध यज्ञ किए गए वह आज भी दशाश्वमेध कहलाता है। ये भारशिव नाग मूलतः विदिशा के ही थे। भारतीय इतिहास में इन नागों का प्रभुत्व समुद्रगुप्त के समय तक रहा।

शुंगकाल में विदिशा भागवत धर्म की प्रसिद्ध नगरी रही और भारशिव नागों के समय में वह शैव मत का केन्द्र बन गई। एक

बार पुन विदिशा को हिन्दू संस्कृति का प्रधान केन्द्र बनने का अवसर मिला।

वैदिश नागों के पश्चात भारतीय इतिहास में विदिशा को राजनीतिक महत्व फिर कभी नहीं मिला। गुप्तकाल मे समुद्रगुप्त ने उज्जैन को अपने साम्राज्य में मिला लिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उज्जैन को अपनी प्रादेशिक राजधानी बनाया। इससे विदिशा का राजनीतिक महत्व कम हो गया, परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय भी एक बार शैव धर्म के इस केन्द्र पर आया। उस समय उदयगिरि के पहाड़ों में जो विदिशा के ही अग हैं, बहुतसी गुफाएं बनाई गई, जिनमें अनेक मूर्तियां स्थापित की गई थीं।

इसके पश्चात इतिहास में विदिशा का नाम नहीं मिलता। उसका स्पष्ट उल्लेख फिर महाराज हर्ष के राजकवि बाणभट्ट ने अपनी कादम्बरी में किया है। परन्तु उसने भूतकालीन क्रिया का उपयोग किया है। अत उसके समय म प्राय ई० सन् ६०० के लगभग विदिशा का अस्तित्व था भी या नहीं, और यदि था तो उसका पूर्व गौरव शेष था या नहीं, यह महत्वपूर्ण बात है। मध्यकाल म भैलस्वामी (सूर्य) मन्दिर के कारण आज भलसा नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है। परन्तु मध्यकाल हमारे इस विवेचन की सीमा के बाहर है।

काव्यों में विदिशा

महाकाव्यों, पुराणों और काव्यों में प्रसिद्ध विदिशा अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल नगरी होगी, इसमें संदेह नहीं। ऊपर के ऐतिहासिक विवेचन के बाद अब हम एक बार यह देखने का प्रयास करेंगे कि प्राचीन विदिशा नगरी का रूप उसका सौन्दर्य एवं वैभव कैसा था? सौभाग्य से दो महाकवियों ने इस नगरी का वर्णन किया है। एक तो कवि-कुल गुरु कालिदास ने और दूसरा सरस्वती के वरदपुत्र महाकवि बाणभट्ट ने।

कालिदास की दृष्टि दशार्ण देश के प्राकृतिक सौंदर्य एवं विदिशा की पण्य स्त्रियों एवं नागरों पर पड़ी थी। उन्होंने विदिशा के पास से बहने वाली वेत्रवती नदी का भी वर्णन किया है। (मेघदूत, पूर्वमेघ)

परन्तु कालिदास का यक्ष कामांध था, उसे रमणी, रमण और उन्मादक प्रकृति के अतिरिक्त कुछ दिखता ही न था। विदिशा का सुन्दर एवं सर्वांग पूर्ण वर्णन तो बाणभट्ट ने किया है। जब बाण कादम्बरी में लिखता है " कलिकालभयपुंजीभूत कृतयुगानुकारिणी" तब उस विदिशा का दृश्य सामने आ जाता है, जो हिन्दू धर्म की स्थापना करने वाले शुंग एवं भारशिव नागों की धात्री थी और जहा भागवत एवं शैव धर्म ने प्रभाव स्थापित किया था तथा जहां वैदिक यज्ञो के धूम से आकाश धूमिल हुआ था। उसके विस्तार के विषय में कवि लिखता है 'यह ज्ञात होता था मानो वह त्रिभुवन की प्रसव भूमि हो। वह वेत्रवती नामक नदी से घिरी हुई थी। आगे बाण को भी मालव सौन्दर्य ने आकर्षित किया और उसने लिखा कि इस वेत्रवती मे मालव रमणियां स्नान करती थी, उनके पीन पयोधरां से नदी की लहरियां टकराकर जर्जरित हो जाती थी। युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले हाथियों को उसमें स्नान कराया जाता था और उनके मस्तकों पर लगे हुए सिन्दूर से नदी का जल लाल हो जाता था।

बाण के यह विजयी कुंजर भारशिव नागों की विजय गाथा का स्मरण दिलाते हैं।

विदिशा के हंसों ने कालिदास और बाणभट्ट दोनों का ध्यान आकर्षित किया था। बाणभट्ट ने लिखा है कि विदिशा के पास वेत्रवती का कूल उन्मद कलहंसों के कोलाहल से मुखरित था।

बाण भट्ट ने विदिशा को किसी शुद्रक राजा की राजधानी बतलाया है। यह शुद्रक कौन है और इसका काल क्या है, यह इस निबन्ध का विषय नहीं है। परन्तु कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में जिस अग्निमित्र को चरित्रनायक बनाया है वह निश्चित ही ऐतिहासिक व्यक्ति है। यह अग्निमित्र इतिहास प्रसिद्ध पुष्यमित्र शुंग का पुत्र था। पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ का संकेत भी इस नाटक में आया है और अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र द्वारा सिन्धु नदी के दक्षिण तीर के यवनों को हराकर अश्वमेध के अश्व को छुड़ा लेने का भी उल्लेख नाटक में है। यद्यपि इस नाटक में अग्निमित्र के रनिवास के षड्यन्त्र का ही वर्णन है, फिर भी प्रसंगवशात् शुंगकालीन इतिहास का उसमें समावेश हो गया है।

विदिशा के आस पास के उपवन बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। ज्ञात यह होता है कि प्राचीन काल में यह आमोद-प्रमोद की प्रधान स्थली रही। कालिदास ने दो दो ग्रंथों (मेघदूत तथा मालविकाग्निमित्र) में इसके उपवनों की प्रशंसा की है। इसके सम्बन्ध में कनिंघम ने (A S I R Vol 10 P 36) एक कहानी भी उद्धृत की है। एक बार राजा रुक्मांगद विश्वमोहिनी नामक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसने उस वेश्या के लिए नौलखा बाग लगाया और उसका नाम विश्व नगर रखा। यह आगे वेश्या नगर फिर बेस्नानगर और फिर विदिशा हो गया। जो हो, इस कथा से भी विदिशा के प्रमोद वनों का स्मरण अवश्य हो आता है।

विदिशा के अभिलेख

सबसे प्रथम हम उन अभिलेखों को लेते है, जो बेस नगर में प्राप्त हुए है। इनकी संख्या लगभग २० है। इनमें तिथियुक्त कोई नहीं हैं, परन्तु इनके द्वारा बेस नगर ही क्या, भारत के इतिहास पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है।

प्राचीनतम वे अभिलेख हैं जो बेसनगर के पूर्व स्थित बौद्ध स्तूप की वेदिका (Railing) में पाए गए हैं। वे अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि मे हैं और उनमें अनेक दानों के उल्लेख हैं। यह ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य के हैं। (A. S. I. R. Vol 10 P. 38)

कालक्रम में फिर वे दो अभिलेख आते है जो ई० पू० दूसरी शताब्दी के मध्य के हैं। इनमें हेलियोदोर के गरुड़ध्वज पर पाया गया लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका पाठ तथा अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

१ देवदेवस वासुदेवस गरुडध्वजे अयं
२ कारिते इअ हेलियोदरेण भाग
३ वतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन
४ योनदूतेन आगतेन महाराजस
५ अंतलिकितस उपता सकासं रजो
६ कासी पु (त्र) (भा) ग(भ)द्रस त्रातारस
७ वसेन (चतु) दसेन राजेन वधमानस।

"देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज (स्तंभ) तक्षशिला निवासी दिय के पुत्र भागवत हेलियोदर ने बनवाया, जो (हेलियोदर) महाराज अंतलिकित के यवन (ग्रीक) राजदूत होकर विदिशा के महाराज कासी (माता) पुत्र (प्रजा) पालक भागभद्र के समीप उनके राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में आए थे।"

इसी लेख के नीचे दो पंक्तियां और हैं।

१ त्रीनि अमुतपदानि (सु) अनुष्ठितानि
२ नयति (स्वग्ग) दमो चाग अपमाद

"तीन अमृत (मोक्ष) पद, दम त्याग और अप्रमाद के सदनुष्ठान से स्वर्ग प्राप्त होता है।"

ग्रीक अंतलिकित (Antialkidas) ई० पू० १४० में विद्यमान था, ऐसा ऐतिहासिकों का मत है। यह काशी पुत्र भागभद्र पुराणों में वर्णित शुंगवंश का नवां राजा था, ऐसा अनुमान है।

परन्तु यहीं एक और अभिलेख प्राप्त हुआ है, जोकि अष्टपहलू स्तंभ पर है। और जिसका पाठ इस प्रकार है —

१ गोतम (१) पुतन
२ भागवतेन
३
४ (भ) गवतो प्रासादोत
५ मस गरुड़ध्वज कारि (त)
६
७ (द्वा) दस-वस अभिसित (े)
८ भागवते महाराजे।

"गोतमी के पुत्र भागवत ने भगवत के उत्तम प्रसाद के लिए गरुड़ ध्वज बनवाया। जबकि भागवत महाराज को अभिषिक्त हुए बारह वर्ष हो चुके थे।' श्री डे० रा० भण्डारकर ने ऊपर का अनुवाद प्रामाणिक मानकर अनुमान किया है कि यह भागवत शुंगवंश का नवां राजा था।

इस अनुमान ने एक और गड़बड़ी पैदा करदी है। 'गौतमीपुत्र' और 'हेलियोदर' के स्तम्भ का 'काशीपुत्र' एक कैसे हो सकते हैं। भले ही यह

अनुमान किया जा सके कि भागभद्र अभिन्न हैं। हमारे मत में भाण्डार-कर का गौतमीपुत्र सम्बन्धी अनुमान सही नहीं है।

जो हो इन अभिलेखों से इतना तो सिद्ध है कि बेसनगर में एक वासुदेव का प्रासादोतम था। शंगवंशीय नरेशों की राजधानी यह विदिशा ग्रीक राजदूतों को भी प्रश्रय देती थी और भारत का भागवत धर्म इतना उदार और आकर्षक था कि उसमें यवन भी प्रश्रय पाते थे।

बेस नगर के इन अभिलेखों के पश्चात के उदयगिरि के गुप्तकालीन अभिलेख आते हैं जो उस समय की गौरव गाथा का वर्णन करते हैं।

ईसा की चौथी शताब्दी के प्रारंभ में साकेत प्रयाग के आस-पास श्री गुप्त नामक एक छोटा सा राजा हुआ। उसके पुत्र का नाम था घटोत्कच। घटोत्कच का पुत्र चन्द्र आपने आपको चन्द्रगुप्त कहता था। उसने प्रसिद्ध लिच्छवि गणतंत्र की कन्या कुमार देवी से विवाह कर गुप्तवंश के उस महान साम्राज्य की नींव डाली जिसके आधीन प्रायः सम्पूर्ण भारत हो गया था और भारतीय संस्कृति तथा कला अपने चरम विकास को पहुंची थी। चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवियों की सहायता से पाटलिपुत्र को जीत लिया, परन्तु पीछे उसे मगध छोड़ देना पड़ा। उसके दिग्विजयी पुत्र समुद्रगुप्त ने पहले हल्ले में ही मगध और पद्मा-वती के नागों को जीत लिया और सम्पूर्ण भारत को अपनी विजय-वाहिनी के वशीभूत कर एवं शकमुरुण्डों को पराभूत कर अश्वमेध यज्ञ किया तथा 'श्री विक्रम' एवं 'पराक्रमांक' के विरुद्ध ग्रहण किये। इस महान् विजेता का 'काव्य कविमति के विभव का उत्सरण' करता था, संगीत कला में तुंबरू, नारद आदि को भी लज्जित करता था (प्रयाग स्तभ लेख) इस प्रकार उसके समय से ही कला एवं साहित्य को गुप्त सम्राटों द्वारा आश्रय मिलना प्रारंभ हुआ। अपनी कन्या प्रभावती का विवाह वाकटक रुद्रसेन से करके इसने गुप्त-साम्राज्य का महत्व ही नहीं बढाया, साथ ही वाकाटकों के सांस्कृतिक वैभव से भी नाता

जोड लिया। साम्राज्य स्थापना और विदेशी शकों के उन्मूलन का शेष कार्य पूर्ण किया चन्द्रगुप्त द्वितीय ने। विदिशा के पास डेरा डालकर उसने पश्चिमी क्षत्रपों का उन्मूलन किया।

इस घटना का वर्णन शाब वीरसेन के उदयगिरि गुहामंडप के तिथि रहित अभिलेख में प्राप्त होता है। इस लेख में उल्लेख है कि कौत्स गोत्रीय शाब जो वीरसेन भी कहलाता था सम्राट चन्द्र गुप्त द्वितीय का सचिव विग्रहिक था, शब्द, अर्थ, न्याय और लोक का ज्ञाता था और पाटलिपुत्र का रहने वाला था। वह सम्राट के साथ विदिशा आया था और भगवान शिव की भक्ति से प्रेरित होकर उसने उदयगिरि पर गुहा बनवाई थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय वहां पृथ्वी को जीतने के उद्देश्य से आया था और वह सम्राट अन्य राजाओं के पराक्रम को मूल्य से खरीद कर दासत्व की शृंखला में बांधने वाला था।

यहीं पर गुप्त संवत् ८२ का सनकानिक वंश के छगलग के पौत्र विष्णुदास का अभिलेख है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय का माडलिक था।

गुप्त संवत् १०६ का जैन गुहा-लेख भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस में लिखा है कि 'प्रसिद्ध गुप्त वंशीय श्री संयुक्त उत्तर गुण संपन्न राजाओं के समृद्धिमान काल के १०६ वें वर्ष (ई० स० ४२८) के कार्तिक कृष्ण ५ के शुभ दिन को शम दम युक्त शंकर नामक व्यक्ति ने सर्प फणों से भयंकर (दिखने वाली) जिन श्रेष्ठ पार्श्वनाथ की मूर्ति गुहाद्वार में बनवाई।'

इस प्रकार गुप्तों ने विदिशा को अपना प्रधान सामरिक केन्द्र बनाया था और उस प्रभावशाली साम्राज्य विस्तार के प्रमाण मध्यभारत के बहुत बड़े भूभागों में मिलते हैं। इस विशाल गुप्त साम्राज्य का हृदय वास्तव में अवन्ति और विदिशा के आस पास का प्रदेश था। दशपुर में चन्द्रगुप्त का स्थानीय शासक नरवर्मन था जो अपने आपको 'सिंहविक्रमगामिन्' लिखता है और इस प्रकार अपने आपको चन्द्र

गुप्त विक्रमादित्य का सेवक घोषित करता है। उधर श्योपुर के हासलपुर ग्राम में किसी नागवर्मन के राज्य का उल्लेख मिला है जो गुप्तों का ही मांडलिक राजा था।

गुप्त सम्राटों की हूणों से सतत टक्करें होती रहीं। कुमार गुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य को हूणों की विजय वाहिनी के प्रबल थपेड़े लगने लगे और मालव में 'पुष्यमित्र' नामक गणतंत्र भी मगध साम्राज्य का विरोधी होगया। ई० सन ४५५ में स्कन्दगुप्त ने इन दोनों पर विजय पाई और गुप्तों की "विचलितकुललक्ष्मी" का 'स्तंभन' कर पुनः विक्रमादित्य का विरुद्ध धारण किया। परन्तु हूणों का प्रवाह फिर प्रबल हो उठा और गुप्त साम्राज्य उनकी टक्करों से जर्जरित हो गया। स्कन्द गुप्त के पश्चात् मध्यभारत की सीमाओं में बुधगुप्त ही उल्लेखनीय है, संभवतः जिसका मांडलिक नरेश माहिष्मती का सुबन्धु था जिसने दासिलक पल्ली नामक ग्राम 'कलयजविहार' (बाग गुहा समूह) को दान दिया था। अस्तु।

विदिशा से प्राप्त अन्य अभिलेख पीछे के हैं और उनका अधिक महत्व नहीं है



विदिशा में प्राप्त मुद्राएं

अन्य महत्वपूर्ण वस्तु जो बेसनगर में प्राप्त हुई वे मुद्राएँ हैं। इनके द्वारा भी इस स्थल की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है।

कनिंघम ने लिखा है (आ० स० इ० रि०, खंड १० पृ० ३५) कि उसने यहां ६० प्रकार की मुद्राएँ प्राप्त की थीं, जिनमें से ७५ गुप्तकाल के पूर्व की थीं और एक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की थी। श्री देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर ने सन १९१३-१४ में जो खुदाई की थी, उसमें उन्हें १०० मुद्राएँ प्राप्त हुई थीं, खाम बाबा के पास ६८ और गणेश मन्दिर के पास ३२। गणेश मंदिर के पास सब तांबे की मुद्राएँ हैं, और 'कार्षपण' हैं। खाम बाबा के पास की मुद्राओं में सत्तावन तांबे की जिनमें दो क्षत्रप तथा पांच नागवंश की थीं। एक पहचानी नहीं जा सकी। शेष में एक सीसे की थी और दस चांदी की। इन चांदी की मुद्राओं में तीन क्षत्रपों की थीं, और सात कलचुरि वंश की।

चार क्षत्रप मुद्राओं में तांबे की दो अस्पष्ट थीं और चांदी की एक महाक्षत्रप वीरदामन की और दूसरी रुद्रसेन द्वितीय की। रुद्रसेन की मुद्रा पर संवत् १७७ पढ़ा हुआ है। एक गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णि की आंध्रभृत्य मुद्रा भी प्राप्त हुई है।

नाग मुद्राओं में गणपति नाग और भीम नाग की मुद्राएँ मिली हैं। एक मुद्रा कृष्णराज की मिली है। यह कृष्णराज कटच्चूर वंश का है। यह लगभग ५७५ ई० के वर्तमान था। कटच्चूर वंश कभी मालवा, गुजरात और उसके महाराष्ट्र पर राज्य करता था। (ई० प० म० ४० पृ० २०) शंकरगण कटच्चूर ने उज्जैन से तथा उसके पुत्र बुधराज ने विदिशा से ताम्रपत्र शासन जारी किए थे। (ए० इ० पु० १२ पृ० ३३)

सन् १९१४-१५ के उत्खनन में श्री भाण्डारकर को ६६ मुद्राएँ प्राप्त हुईं। इनमें ५६ कार्षपण हैं। पश्चिमी क्षत्रप वंश के महाक्षत्रप ईश्वरदत्त क्षत्रप के प्रथम वर्ष की मुद्रा भी मिली और नागों में गणेन्द्र एवं भीम नाग की मुद्राएँ हैं। एक मुद्रा में केवल 'मदग' लिखा पाया गया। (आर्कालोजिकल सर्वे आफ इण्डिया वार्षिक रिपोर्ट १८१३-१४ पृष्ठ २१०, १२४ तथा १९१४-१५ पृ० ८७-८८)



विदिशा के यज्ञकुण्ड

बेस नगर की खुदाई में पाए गए यज्ञकुण्ड उनसे सम्बन्धित दो भवनों के भग्नावशेष तथा सामग्रियाँ अत्यधिक मनोरंजक जानकारी देती हैं।

ज्ञात यह होता है कि यहाँ कोई महान यज्ञ हुआ था। दो भवनों में एक तो ऋषि मुनियों के शास्त्रार्थ का स्थान ज्ञात होता है, दूसरा भोजनशाला। शुंगों के समय में वैदिक धर्म एवं यज्ञादि की जो पुनर्स्थापना हुई थी, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण ये यज्ञकुण्ड हैं।

इन यज्ञों का आयोजन किस प्रकार एवं किनके द्वारा हुआ होगा, यह यहाँ प्राप्त ३१ मिट्टी के टुकड़ों से ज्ञात होता है जिन पर मुद्राओं की छापें लगी हुई हैं। इन ३१ टुकड़ों में ५ अस्पष्ट होने के कारण पढ़ी नहीं जाती। १८ के पीछे डोरी या डिब्बे के चिह्न हैं और दूसरी ओर मुद्रा चिह्न और लिखावट है। शेष २६ में १० विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ हैं। और आठ इन्हीं की पुनरावृत्ति हैं। एक टुकड़े के पीछे चिपकाने के चिह्न नहीं हैं।

ज्ञात यह होता है कि पहले सन्देश काठ की पाटियों पर लिखा जाता था, उसके ऊपर दूसरी पटिया रखकर सन या ऐसे ही किसी पदार्थ से बाँधकर गाँठ पर दोनों पटियों को जोड़ती हुई गीली मिट्टी लगाकर उस पर मुद्रा लगा दी जाती थी। कभी कभी मिट्टी इस बंधन से दूर लगाई जाती थी।

इसमें से जिस टुकड़े के पीछे पटिया पर चिपकाने का चिह्न नहीं है वह सन्देश पाने के लिए अधिकार-पत्र ज्ञात पड़ता है। उस पर ऊपर बाईं

ओर बैठा हुआ सांड़ है, उसके सामने किसी लांछन (Symbol) का चिह्न है। एक सकोर के नीचे यह दो पंक्तियां हैं:—

टिमित्रदातृस्य(स)हे(ता)
(पो) तामंत्र सजन(ो?)

इसमें आया शब्द "टिमित्र" किसी व्यक्ति का नाम है। यह ग्रीक 'डिमिट्रिअस' (Demetrius) का संस्कृत रूप ज्ञात होता है। ज्ञात यह होता है कि इस यज्ञ का वह दाता अथवा यजमान था। एक भागवत यवन हेलियोदोर ने विष्णु मन्दिर में गरुड़ध्वज स्थापित किया और एक दूसरे यवन डिमिट्रियस ने इस यज्ञ का यजन किया। चंद्रगुप्त मौर्य के समय से ग्रीकों की हुई राजनीतिक एवं सामरिक पराजय आगे शुंगों के काल में सांस्कृतिक वं धार्मिक पराजय के रूप में परिणत हो गई।

इसमें दो टुकड़ों पर दो राजाओं का नाम है:—

.........स्य मह (ा) र (ा) ज श्री विश्व (ा) मित्रस्य स्वाम (निः)।

इस पर नन्दी एवं त्रिशूल के चिह्न हैं।

....र (तो)......... .....पस (यज्ञ अ) (ो) (होतृ) (तृ) ..(नि)।

इसके ऊपर नन्दी बना हुआ है।

यह विश्वामित्र एवं यज्ञ श्री राजा कौन है कुछ ज्ञात नहीं। संभवतः यह विश्वामित्र शुंगवंशीय 'वसुमित्र' हों। इतना अवश्य है कि डिमिस्ट्रियस के यज्ञ को राजा का संरक्षण प्राप्त था और उसका प्रबन्ध उनके दण्ड-

नायक एवं व्यवहारस्याधिकारी भी कर रहे थे। यह बात वहाँ पाए गए इन अधिकारियों की मुद्राओं के चिह्न युक्त तीन मिट्टी के टुकड़ों से ज्ञात होता है।

एक मुद्रा पर ऊपर की ओर हाथी खड़ा हुआ है जो सूंड में पत्तों एवं फूल गुच्छ वाली लिए हुए हैं। हाथी के नीचे दो लकीरों के नीचे लिखा है —

व्यवहारस्याधिका (रि) र

दो दण्डनायकों की मुद्राएँ हैं, जिनमें से एक पर दो पंक्तियों में लिखा है—

... . पर तु मु ... ..
... ' . दण्ड नायक बिलु . . ..

दूसरी पर दो पंक्तियों में लिखा है —

"वेतगिरिकपुत्र
(द) ए (ड) नायक श्री सेन"
(इस प्रकार के दो टुकड़े मिले हैं।)

श्वेतगिरिक का पुत्र 'सेन' और 'बिल' दो दण्डनायक (पुलिस अधिकारी) एवं व्यवहारस्याधिकारियों के सदेश प्रबंध के संबंध में ही आए आए होंगे।

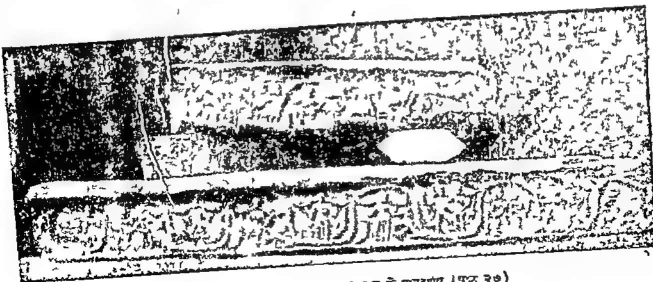
बारह मिट्टी के टुकड़ों पर साधारण नागरिकों की मुद्राओं के चिह्न हैं। इन नागरिकों ने संभवतः अपनी भेंट भेजी होंगी।

यहाँ पर कुछ और छोटी-मोटी वस्तुएं भी प्राप्त हुई है। इनमें से पदक ढालने का साँचा, तथा पत्थर की जार (Jar) का एक खंड है जिस पर 'हुविलस्य' लिखा है तथा डेगून का चित्र बना है। यह भी विदिशा के यूनानियों से संबंध की साक्षी है।

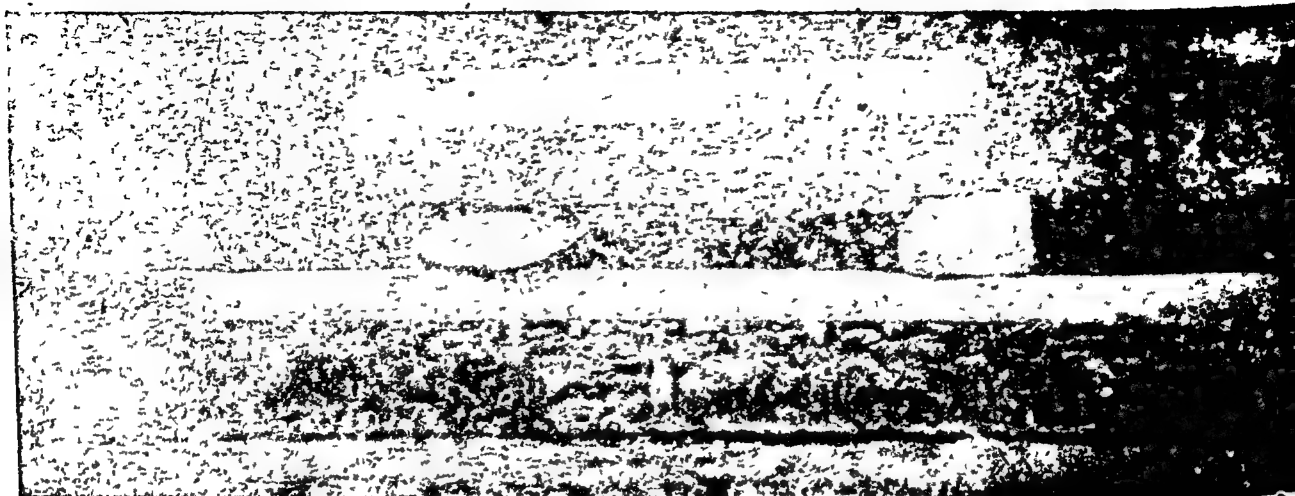




मथुरा से प्राप्त मौर्यकालीन मूर्तियाँ (पृष्ठ [illegible])



उदयगिरि के पास प्राप्त बौद्ध स्तूप का चड के अवशेष (पृष्ठ २७)



उदयगिरि के पास प्राप्त मौर्य कालीन बौद्ध स्तूप के अवशेष (पृष्ठ २७)



मौर्य कालीन छत्रयुक्त सवार तथा हाथी (पृष्ठ २८)

विदिशा की दो प्राचीन प्रतिमाएं
(पूर्व मौर्य)

भारत की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु यहां प्रस्त प्रतिमाएं बहुत प्राचीन काल की प्राप्त नहीं होती। अत्यन्त प्राचीन काल में हमारे देश से लकड़ी की प्रतिमाओं का निर्माण होता था और वे काल के क्रूर प्रहार को अधिक समय तक सहन करने में असमर्थ थीं, इस कारण नष्ट हो गई। फिर भी जो प्राचीनतम प्रस्तर-प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं वे ईसवी पूर्व ६०० वर्ष की अवश्य हैं। मध्यभारत के बाहर इस पूर्व मौर्य काल की सात प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं —

१ परखम की यक्ष मूर्ति जो अब मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है।

२ बरोदा ग्राम मे प्राप्त यक्ष मूर्ति जो मथुरा संग्रहालय में है।

३ मथुरा के पास मनसा देवी के नाम से पूजी जाने वाली मूर्ति।

४ मथुरा के पास एक और की मूर्ति।

५ पटना के पास मिली एक यक्ष मूर्ति।

६ पटना के पास प्राप्त एक और पुरुष मूर्ति।

७ कोसम की यक्ष प्रतिमा।

इसी काल की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्तियां मध्यभारत में विदिशा —भेलसा में प्राप्त हुई हैं। इन प्राचीन खण्डहरों में सन १८७४ ईसवी में जनरल कनिंघम ने एक प्राचीन स्त्री मूर्ति खोज निकाली थी। तत्कालीन ग्वालियर नरेश ने इस मूर्ति को इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता को दान में दे दिया। इस मूर्ति के अतिरिक्त इसी प्रकार की एक

मूर्ति का ऊपरी खण्ड लेखक को भेलसा में प्राप्त हुआ था जो गूजरी महाल संग्रहालय में सुरक्षित है। जहां पहली मूर्ति मिली थी, उससे कुछ दूर पर ही यह दूसरा मूर्ति खण्ड मिला है जिसमें कमर के ऊपर का ही भाग है। निश्चय ही यह मूर्ति खण्ड अपने मूल स्थान से हटा हुआ था क्योंकि उसके माथे पर आधुनिक श्रद्धालुओं ने सिन्दूर-पूजन कर रखा था।

इस मूर्ति की तुलना यदि जनरल कनिंघम द्वारा खोजी की गई मूर्ति से की जाय तो इनमें अनेक समानताएं ज्ञात होती हैं। वह मूर्ति ६ फीट ७ इंच ऊंची है, और दोनों मूर्तियों की गले के हार के नीचे तक की लम्बाई २ फीट है जिससे ज्ञात होता है कि इनकी ऊंचाई एकसी है। शिरोभूषा तथा अलंकारों में बहुत समानता है। इन दोनों मूर्तियों में केशविन्यास दो जूड़े बांध कर किया गया है। भारत की प्राचीन प्रसाधन कला के अनुसार आज कल भी स्त्रियां दो जूड़े बांधने लगी है, यद्यपि उनका आधार दूसरा है। दोनों मूर्तियों के कर्णाभरण समान ही हैं। पहली मूर्ति भी दो खण्डों में टूटी हुई है, यद्यपि उसके दोनों खण्ड प्राप्त हो गए। दूसरी मूर्ति भी लगभग उसी स्थल पर टूटी है। इन मूर्तियों की समानता, उनके प्राप्ति स्थल की निकटता तथा उनके समान रूप से खण्डित होने से एक ही परिणाम निकाला जा सकता है कि पूर्व मौर्यकालीन किसी प्रसाद को इन प्रतिमाओं ने सुशोभित किया था और ये दोनों किसी एक ही दैवी प्रकोप से खण्डित हुई।

इन पूर्व मौर्यकालीन प्रतिमाओं की संख्या नौ है और उसमें से दो मध्यभारत की इस प्राचीन नगरी में प्राप्त हुई हैं।

इन सब मूर्तियों के काल के विषय में बहुत मतभेद है। इनकी शैली को देखते हुए इनकी निम्नलिखित विशेषताएं दिखती है: —

(१) इनकी विशालता।
(२) चारों ओर से कोर कर बनाने की शैली।



उदयगिरि की शिव मूर्तियां (पृष्ठ ३१)



कल्प वृक्ष स्तभ शीर्ष
भेलसा (पृष्ठ ३०)



उदयगिरि पर प्राप्त गंगामूर्ति (पृष्ठ ३४)



भेलसा में प्राप्त महिष
मर्दिनी मूर्ति (पृष्ठ२५)

(३) यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति।

(४) पैरों की भारी भरकम बनावट।

(५) बगलों और पीछे के भाग की उपेक्षा कर सामना अधिक विस्तार से बनाने की प्रवृत्ति।

इनके निर्माण काल के विषय में अनेक मतभेद हुए हैं। कुछ विद्वान इन्हें यक्ष यक्षिणियों की मूर्ति मानकर मौर्यकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं; कुछ इन्हें पूर्व मौर्य कालीन देव-कुलों में रखी हुई राजा रानियों की प्रतिमाएं मानते हैं।

राजवंशों की मूर्तियों के देवकुलों का अस्तित्व भास के 'प्रतिमा' नामक नाटक से ज्ञात होता है। उस समय यह प्रथा थी कि प्रत्येक राजवंश का अपना देवकुल होता था जिसमें मृत्यु के पश्चात राजा की मूर्ति स्थापित की जाती थी और कालान्तर में उस देवकुल में अनेक मूर्तियां एकत्रित हो जाती थी। यह अनुमान किया गया है कि जो मूर्तियां पटना के पास मिली हैं वह शैशुनाक राजाओं के देवकुल की थीं। उन पर उत्कीर्ण लेखों के अनुसार उन्हें अजउदयिन, नन्दिवर्धन और वर्तनन्दि की मूर्तियां बतलाया गया है तथा परखम की मूर्ति को अजात शत्रु की मूर्ति कहा गया है। इन शैशुनाक सम्राटों का अवन्ति से राजनीतिक सम्बन्ध था। ईसा से प्राय ६०० वर्ष पूर्व उज्जैन पर महा प्रतापी प्रद्योत नामक राजा राज्य करता था, जो अपनी वीरता के कारण चण्ड प्रद्योत कहलाता था। वत्सदेश का राजा उदयन इसका दामाद हुआ। यह वही उदयन है जिसकी कथाएं उज्जैन के ग्राम वृद्ध अनेक शताब्दियों के पश्चात भी सुनाते रहते थे (प्राप्यावन्तीनुदयनकथा कोविदग्रामवृद्धाम्, पूर्व मेघ ३२) मगध का राजा उस समय शिशुनाक वंशी अजात शत्रु था। उदयन के पश्चात अवन्ति का राजा पालक हुआ। पालक के प्रजा पीड़न से दुखी होकर उज्जयिनी की जनता ने उसे राज्यच्युत कर विशाखयूप को राजा बनाया। अजातशत्रु के पश्चात मगध का राजा दर्शक हुआ और उसका उत्तराधिकारी उसका

पुत्र अजउदयी हुआ। अजउदयी ने अवन्ति के राजा विशाखयूप को जीत कर उसे अपना करद बनाया और विशाखयूप की मृत्यु के पश्चात् अवन्ति के राज्य की बागडोर सीधे अपने हाथ में ले ली। इसी अजउदयी ने पाटलिपुत्र नगर की स्थापना की। अजउदयी के पश्चात नन्दिवर्धन गद्दी पर बैठा। इस प्रकार भारतवर्ष के इतिहास मे मगध-साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसकी पूर्वी राजधानी पाटलि-पुत्र थी और पश्चिमी उज्जयिनी। उज्जयिनी और पाटलिपुत्र के राजमार्ग पर विदिशा नगरी स्थित थी।

विदिशा के इस सम्बन्ध के कारण यद्यपि इन प्रतिमाओं के शैशुनाक काल की तो मानी जा सकती है, परन्तु विदिशा में प्राप्त यह मूर्तियां तो स्त्री-मूर्तियां हैं अतएव इन्हे किसी देवकुल की प्रतिमाए नहीं माना जा सकता। ये पटना के देवकुल की रानियों की प्रतिमाएं नहीं हो सकतीं और न वहां से विदिशा लाई जा सकती हैं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ये दोनों मूर्तियां तो विदिशा के किसी प्रसाद की अलंकरण मात्र हैं।

विदिशा के मौर्यकालीन अवशेष

विदिशा के भग्नावशेषों में भारतीय तक्षणकला के प्रत्येक ऐतिहासिक काल के श्रेष्ठतम उदाहरण प्राप्त हों, यह आश्चर्य की बात नहीं। अपनी शैली का कौशल, पत्थर जैसे कठोर माध्यम पर दिखाने के पूर्व उत्कीर्णकों ने काष्ठ एवं हाथी दाँत पर प्रयोग किए थे। अनुमान यह किया जाता है कि पत्थर पर उभरी हुई मूर्तियाँ (अर्द्धचित्र तथा अलंकरण) हाथी दाँत पर बनी हुई कला कृतियों का अनुकरण करने की चेष्टा से बने हैं। इन हाथीदाँत के कारीगरों की परम्परा विदिशा में मौर्यकाल से पूर्णतया विकसित हो चुकी थी इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। साँची के दक्षिण तोरण के बाएं खंभे पर विदिशा के दन्तकारों के दान का उल्लेख है। भरहुत की वेदिका पर विदिशा के फग्गुदेव आदि के दान के लेख हैं।

भारत में मौर्यों के पूर्व की केवल नौ प्रस्तर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से दो विदिशा के खंडहरों में मिली हैं। पहली मूर्ति सन १८७४ में एलेक्जेन्डर कनिंघम को प्राप्त हुई थी। यह विशालकाय स्त्री मूर्ति ६ फीट ७ इंच ऊंची है। यह दो भागों में टूट गई है और इसके हाथों का पता नहीं चला है। यह मूर्ति आजकल कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है।

मौर्य सम्राटों का विदिशा से संबंध रहा है। सम्राट अशोक अपने युवराज काल में ही विदिशा नगरी की श्रेष्ठि दुहिता देवी के प्रणय बंधन में बँध चुके थे और बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पश्चात काकनादबोट (साँची) पर उनके द्वारा बौद्ध भिक्षुओं के संघ की स्थापना हुई और उनका विशेष रूप से संरक्षण किया गया। यद्यपि साँची में ही इस काल की कला कृतियों का श्रेष्ठतम भंडार है, फिर भी विदिशा के निकट प्राप्त स्तूप की बाड़ के अवशेष और उदयगिरि पर प्राप्त कुछ [illegible]म शीर्ष मौर्य कला के सुन्दर उदाहरण हैं।

विदिशा का यह स्तूप तुलनात्मक रूप से छोटा था ऐसा ज्ञात होता है। इसकी प्रस्तर बाड के कुछ अंश ही मिले हैं स्तूप का पता नहीं चला। कारण यह होगा कि बस्ती के निकट होने के कारण स्तूप की सामग्री मकान बनाने वालों के काम आ गई। सन १८७४ में सबमें पहिले इन्हें कनिंघम ने देखा था। उनने लिखा है 'बेश नगर ग्राम के बाहर पूर्व की ओर मुझे एक बाड के कुछ अंश मिले जो कभी बौद्ध स्तूप को घेरे हुए थी।...... चारों अभिलेख युक्त हैं जिनमें अशोक कालीन लिपि में दाताओं के छोटे छोटे लेख हैं। इस कारण से इस स्तूप की तिथि ई० पू० तीसरी शताब्दी के मध्य के पश्चात की नहीं मानी जा सकती।"

कनिंघम साहब को उदयगिरि पहाड़ी के दक्षिणी भाग में भी बौद्ध बाड और स्तंभ के अवशेष मिले थे। परन्तु आज वह प्राप्त नहीं, केवल सिंहशीर्ष युक्त स्तंभ रह गया है। लुहाँगी पहाड़िया पर प्राप्त स्तंभ शीर्ष भी इसी काल की कृति है। बेसनगर की सवारयुक्त हाथी की मूर्ति भी इसी काल की है।

परन्तु मौर्य एवं प्रागमौर्य काल की इन कला कृतियों में विदिशा का कलाधार भारतीय कला का नेतृत्व करता ज्ञात नहीं होता। वह पाटलिपुत्र के कारीगरों का अनुगत सा ज्ञात होता है। उसका श्रेष्ठतम उपयोग तो मौर्य काल में साँची में हुआ और वहीं उसने कला के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए।

विदिशा के शुंग तथा नाग कालीन अवशेष

विदिशा का महत्व अपनी चरमसीमा पर पहुँचा पराक्रमी शुंग वंश के राज्य काल में। इन शुंगों के समय में भारत में एक अपूर्व सांस्कृतिक नवचेतना के दर्शन हुए। पुष्यमित्र शुंग ने भागवत धर्म को पूर्ण विकसित किया। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

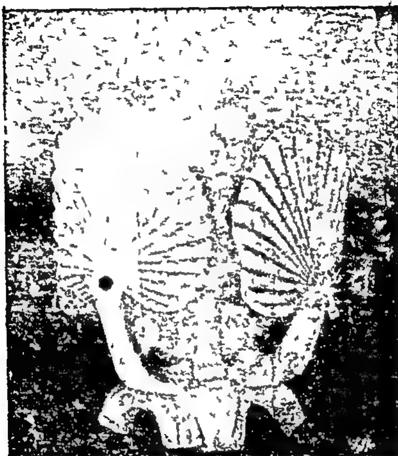
इन परिस्थितियों का प्रभाव कला पर पड़ना भी प्राकृतिक था। भागवत धर्म के विकास का जो सूत्रपात इन शुंगों के काल में हुआ उसे नाग और वाकाटकों ने पोषित किया और गुप्तों के काल में वह अपनी चरम सीमा पर पहुंचा। धर्मानुगामिनी भारतीय कला का विकास भी इसी सरणी में हुआ। इस नवचेतना का केन्द्र विदिशा थी। अतएव न केवल शुंगों के समय में ही वरन आगे नाग और गुप्त काल में भी विदिशा के बताए मार्ग पर भारतीय कला प्रगति करती रही। शुंगों के काल तक यवनों (ग्रीकों) से सम्बन्ध भी घनिष्ठतर हो चुका था। उनकी कला से भी भारतीय कारीगर ने स्फूर्ति ली और प्राग्मौर्य तथा मौर्य कला के यथार्थ चित्रण से आगे की ओर प्रयाण प्रारम्भ हुआ जिसने गुप्तकालीन एवं पूर्व मध्यकालीन आदर्शवादी भाव प्रधान कृतियों को जन्म दिया।

इस काल में विदिशा की तक्षण कला के उदाहरण स्वरूप कुछ स्तंभ प्राप्त हुए हैं। इतिहास प्रसिद्ध हेलियोदोर का स्तंभ तथा उसके पास ही प्राप्त विष्णु की मूर्ति अवशेषों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। एक स्तंभ का मकर शीर्ष भी यहां प्राप्त हुआ है। वासुदेव अनिरुद्ध और प्रद्युम्न की पूजा साथ साथ की जाती है और उनके मंदिर भी साथ ही बनाए गए हैं। इनमें कामदेव के अवतार प्रद्युम्न मकर केतन हैं। यह मकरध्वज भी विदिशा के किसी ऐसे ही मन्दिर की स्मृति है।

सबसे अधिक कौतूहल वस्तु विदिशा में प्राप्त कल्पवृक्ष स्तंभ-शीर्ष है। यह अब कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। चार की चौकी के ऊपर एक गमले जैसी आकृति में यह उसमे पत्तों का जटाओं युक्त पेड़ बनाया गया है। पत्तों के अतिरिक्त छोटे छोटे फलों के आकार भी बीच-बीच में बने हैं। नीचे आने वाली जटाओं से आठ भाग बन गए हैं। चार मुद्राओं से भरे पात्र चार, भरे हुए थोरे फल्ल कमल तथा शंख इन खानों में बने हुए है। बुद्ध कला में अंकित बोध वृक्ष ब्राह्मण शुंगों की कला में कल्प वृक्ष बनकर आया। विदिशा के पास प्राप्त कुछ मुद्राओं पर भी घाट और वृक्ष के चिह्न मिलते हैं। इसे अभी तक बोधिवृक्ष माना गया है। सम्भावना यह अधिक है कि यह कल्पवृक्ष का अंकन हो।

भागवत शुंगों के पश्चात विदिशा में शैव नागों का विकास हुआ। ई० प्र० प्रथम शताब्दी के मध्य तक इन नागों का शासन मध्यभारत के बहुत बड़े भाग पर रहा। बीच में कनिष्क द्वारा पराजित होकर इन्हे सुदूर नागपुर आदि स्थानों की शरण लेना पड़ी। सन १५५ ई० के लगभग वीरसेन नाग ने अन्तिम कुषाण सम्राट वासुदेव को पराजित किया। इस समय तक विदिशा का नागों की प्रमुख तीन राजधानियां बन गई थीं। पद्मावती (पवाय)कान्तिपुरी (कोतवार) और मथुरा इस प्रकार विदिशा के नागों द्वारा प्रवार्तित कला का प्रचार लगभग सभी उत्तर भारत में हुआ। अपने प्रवास काल में वे अपनी परम्पराएं मध्य-प्रदेश में नागपुर तक ले गए।

नागों की प्रशस्ति में एक ताम्रपत्र लेख में लिखा है कि भारशिव(नागो) ने शिवलिंग को अपने कंधे पर रखकर शिव को परितुष्ट किया, उनका अभिषेक उस भागीरथी) के पवित्र जल से हुआ था ,जिसे इन्होंने अपने पराक्रम से प्राप्त किया था। उन्होंने दस अश्वमेघयज्ञ करके अवभृथ स्नान किया था। इस लेख से नागों के धर्म पर प्रकाश पड़ता है।



ताड स्तंभ शीर्ष (पृष्ठ २१)



सप्त मातृकाएं, विदिशा (पृष्ठ २२)











उदयगिरि गुफा में [illegible]
[illegible] गंगा, यमुना [illegible]
[illegible] (पृष्ठ १४)

कुशाणों ने ध्यानी बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया था। उदयगिरि की वीणा गुहा में जो शिवमूर्ति है उसमें ध्यानी बुद्ध की मूर्ति का ही अनुकरण किया गया है। इस एकमुख शिवविग्रह की सौम्य शांत मुद्रा अत्यन्त आकर्षक है।

शैव नागों ने गंगा को अपने राजचिह्न के रूप में स्वीकार किया। गंगा का न केवल मुद्राओं पर अंकन किया गया वरन मथुरा एवं भरहुत की बौद्ध वृक्षकाओं और यक्षिणियों को गंगा का रूप देकर मंदिरों के द्वारों पर प्रतिष्ठित किया गया। गंगा का यह रूप गुप्तों ने भी अपनाया और आगे मन्दिर की पवित्रता की रक्षिका के रूप में एक ओर मकर वाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना को प्रतिष्ठित किया गया।

महाभारत में नागों को ताडध्वज कहा गया है। विदिशा में एक अत्यन्त सुन्दर ताड स्तंभ प्राप्त हुआ है। ज्ञात यह होता है कि ये ताड स्तंभ नागों ने या तो शिव मन्दिर में स्थापित किए होंगे या अपने आरामों में। विदिशा में नागकालीन नन्दी मूर्ति एवं कुबेर मूर्ति भी प्राप्त हुई है। विदिशा एवं उदयगिरि के अधिक अन्वेषण होने पर नागकालीन कला के उदाहरण मिलने की आशा है।

विदिशा के गुप्त कालीन अवशेष

गुप्तों की विजय वाहिनी ने सम्पूर्ण भारत पर एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया। देश के प्रत्येक भाग में और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में अपूर्व नवोन्मेष एवं नवचेतना दिखाई दी। कलाकौशल और कल्पना की उच्चतम परिधि तक गुप्त कलाकार पहुंचा। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ने भारत को अपनी रंगस्थली बनाया। गुप्तकालीन कलाकार ने मिट्टी, पत्थर, सोना, चांदी जिस माध्यम को भी लिया उसमें सौंदर्य और मनोरमता का साकार रूप दे दिया। धार्मिक क्षेत्र में परम भागवत गुप्त सम्राटों ने सभी धर्मों के विकास को पूर्ण अवसर दिया। स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल ने एक स्थल पर लिखा है कि गुप्तों का वर्णन लेखिनी को पवित्र करता है। हमारा मत है कि गुप्त कालीन कला का वर्णन मानव के मानस और मस्तिष्क दोनों को पवित्र करता है।

गुप्तों के समय में यद्यपि विदिशा राजधानी नहीं रही परन्तु उसका सांस्कृतिक, सामरिक एवं राजनीतिक महत्व कम नहीं हुआ, यह ऊपर लिखा जा चुका है।

गुप्तकालीन कलाकेन्द्रों में उदयगिरि का स्थान उच्चतम एवं श्रेष्ठतम है। उदयगिरि की अधिकतर गुहाएं एवं उसकी अनुपम मूर्तियां इसी काल में बनी हैं। विष्णु एवं उनके अवतारों की मूर्तियों में जो दिव्य सौंदर्य उदयगिरि में अवतरित हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

गुप्त सम्राटों का एक प्रिय विरुद 'परम भागवत' था। विष्णु के वाहन गरुड़ को गुप्त सम्राटों ने अपने ध्वज के शीर्ष पर स्थान दिया था जैसा कि उनके अनेक सिक्कों में बनी ध्वजाओं पर अंकित है। उनके काल में विष्णु और उनके अवतारों की अनेक लोकोत्तर प्रतिमाएं बनतीं यह स्वाभाविक ही है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है चन्द्रगुप्त द्वितीय स्वयं विदिशा आए थे। परिणामतः उदयगिरि में उनकी श्रद्धा के अनुरूप ही विष्णु-प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इनमें उदयगिरि की गुहा नं० १३ में शेष शायी विष्णु की प्रतिमा प्रधान है। चतुर्भुज विष्णु शेष नाग की कुंडलियों पर लेटे हुए हैं। इस प्रधान मूर्ति के ऊपर कुछ उभरी हुई अस्पष्ट नौ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पहली दो मूर्तियाँ काल के प्रभाव से अत्यन्त अस्पष्ट हैं, उनके अवशेषों से वे संभवतः ब्रह्मा और लक्ष्मी के अंकन ज्ञात होते हैं। तीसरी मूर्ति गरुड़ की है जो सम्पूर्ण पक्षी की आकृति में अंकित है। गरुड़ के पश्चात् एक राज पुरुष तथा रानी का अंकन किया गया है जिनके पीछे चार अन्य व्यक्ति हैं। राजा और रानी अनुमानतः स्वयं सम्राट चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के अंकन हैं।

उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार के दोनों ओर विष्णु की खड़ी प्रतिमाएं हैं, इनमें से विशेषतः बाईं ओर की मूर्ति गुप्तकालीन मूर्तिकला में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसके नीचे के दोनों हाथों के आयुधों को मानवाकृति दे दी गई है। कल्पना के धनी गुप्त कालीन कलाकार ने विष्णु की गदा की स्त्री के रूप में कल्पना की है और चक्र की पुरुष के रूप में।

उदयगिरि की गुहा नं० ५ में विष्णु के वराह अवतार की वह लोकोत्तर सौन्दर्यमयी प्रतिमा है जो गुप्त कला की ही नहीं भारतीय कला की श्रेष्ठतम उदाहरण है। मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण के वर्णन के लिए गिरा को नयन की और नयन को गिरा की आवश्यकता होती है। इस नयन तत्त्व की पूर्ति चित्र द्वारा संभव है, परन्तु इस प्रतिमा के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसका उत्तम से उत्तम चित्र भी इस प्रतिमा के सौन्दर्य का, उसकी भव्यता एवं सजीवता को शतांश भी अंकित नहीं कर सकता। और फिर कलाकार ने जो पार्श्व-वातावरण इस मूर्ति के चारों ओर अंकित किया है वह एक चित्र में आ भी नहीं

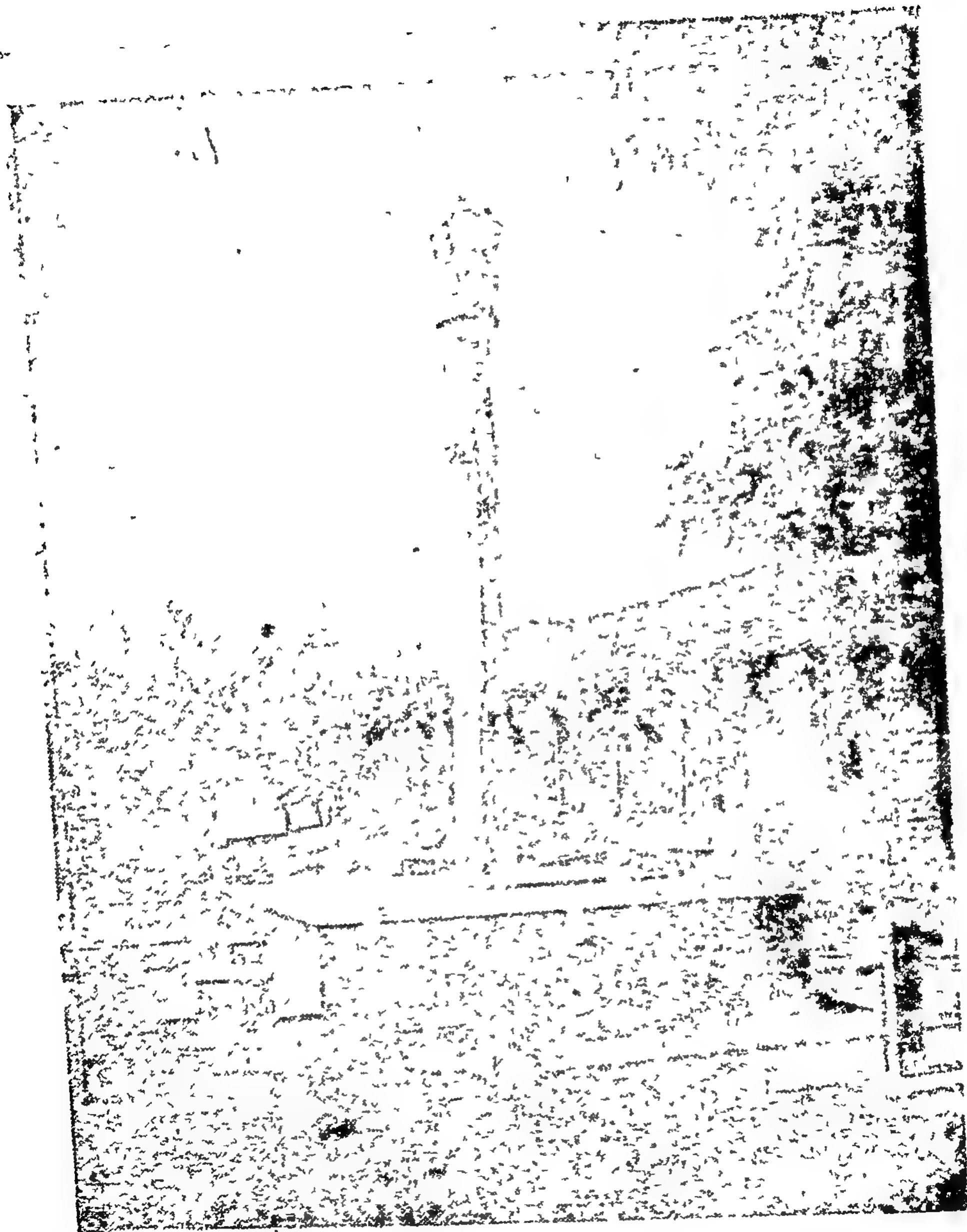
सकता। अतः यहां 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' की भावना सार्थक होती है।

यह विशाल प्रतिमा लगभग १२ फीट ऊंची है। चतुर्भुज न होकर यह मूर्ति दो हाथों वाली है। सम्पूर्ण शरीर मानवाकार है केवल सिर बराह का है। बायां पैर शेषनाग की कुण्डली पर स्थित है और शेषनाग का सिर और हाथ मानवाकार हैं तथा वह वराह भगवान के सामने कर बद्ध है। गले में विशाल वैजयन्ती माला है। सम्पूर्ण शरीर की बनावट इतनी दृढ़ता और ओज में पूर्ण है कि अंग प्रत्यंग से शक्ति और सजीवता फूटी पड़ती है। पृथ्वी स्त्री-आकृति की है, उसका मुख टूट गया है परन्तु सम्पूर्ण शरीर अखण्ड है। पृथ्वी की तुलनात्मक लाघवता विष्णु की इस महानता का द्योतक है।

पुराणों में वर्णन है कि सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान ने वराह का अवतार धारण कर पृथ्वी का सागर के गंभीर गर्त्त से उद्धार किया था। इसी दृश्य का यह कलात्मक अंकन है। पृष्ठभूमि में दर्शित लहरें और शेषनाग समुद्र का अस्तित्व प्रकट करते हैं। पृथ्वी के इस उद्धार को देखकर संपूर्ण देव सृष्टि आनन्द मना रही है। ब्रह्मा, शिव, यक्ष, किन्नर राक्षस सभी इस महान वराह का स्तवन करते हुए तथा आनन्द मनाते हुए दिखाए गए हैं। पास ही इसी दृश्य से लगे हुए दक्षिण एवं वाम पार्श्वों में दोनों ओर एक और दृश्य अंकित है। यद्यपि दोनों ओर एक से दृश्य हैं, परन्तु वाम पार्श्व का कुछ विशेषता लिए है। सबसे ऊपर कोई देवांगना हाथ जोड़े आकाश में उड़ रही है। उसके नीचे छह स्त्रियों का गीत, वाद्य और नृत्य युक्त दृश्य दिखाया गया है। मध्य में एक स्त्री नृत्य कर रही है, शेष सब वीणा, वेणु, मृदंग, कांस्यताल बजा रही हैं। नीचे गंगा और यमुना अपने अपने वाहन कूर्म और मकर पर आरूढ़, हाथों में घट लिए अवतरण कर रही हैं। उनके जल की धाराएं एक स्थल पर मिली हैं। और नीचे समुद्र (वरुण) हाथ में घट लिए खड़े हैं, जहां



उदयगिरि गुहा म वराह मूर्ति (पृष्ठ ३८)



वेस ग्राम का हलियोदोर स्तंभ(पृष्ठ २८)

पर इन दोनों नदियों का जल मिल रहा है। दक्षिण पार्श्व में इसी प्रकार का दृश्य है। केवल नृत्य-गीत का अंकन नहीं है।

देखना यह है कि क्या यह सब चित्रण अकारण अथवा केवल सौन्दर्य वृद्धि के लिए कुछ पौराणिक घटनाओं का चित्रण करने के लिए हुआ है? क्या विष्णु के वराह रूप में पृथ्वी के उद्धार करने की कथा को मूर्त रूप देने भर के लिए कलाकार ने यह लोकोत्तर दृश्य प्रस्तर के कुक्षि में अंकित किया है? गुप्त कालीन यह सर्वश्रेष्ठ कलाकार निश्चय ही इससे कुछ अधिक कार्य के लिए नियुक्त किया गया था। यदि ऐसा न होता तो दोनों पार्श्व के गंगा-यमुना एवं समुद्र के दृश्य विशेष अर्थ न रखते। सम्राट समुद्रगुप्त ने सम्पूर्ण भारतवर्ष की विजय यात्रा करने के उपरान्त अश्वमेध यज्ञ किया और गंगा-यमुना की पावनता को सार्थक किया। इसीका कल्पनात्मक चित्रण इनके पराक्रमी पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वराह प्रतिमा के दोनों ओर कराया। वराह द्वारा पृथ्वी के उद्धार का अंकन स्वयं चन्द्रगुप्त द्वितीय के पराक्रम का द्योतक है। उसने अपने बाहुबल से भारत धरा का उद्धार म्लेच्छ-वाहिनी से किया अथवा यदि सम्राट के साधिविग्रहिक शाब वीरसेन के शब्दों में कहे तो "अन्य राजाओं को दास बनाकर अपने पराक्रम रूपी मूल्य से चन्द्रगुप्त ने पृथ्वी को मोल लिया" और जिसके धर्माचरण के कारण पृथ्वी जिस पर अनुरक्त है, उन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने आदिवराह के उस तेजोमय रूप का अंकन कराया जिसने अतुलनीय पराक्रम से पृथ्वी का उद्धार किया।

स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल ने इस दृश्य में पृथ्वी को ध्रुवस्वामिनी का और वराह को चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्रतीकात्मक अंकन माना है। चन्द्रगुप्त ने आर्यावर्त की रानी ध्रुवदेवी और भारत भूमि का उद्धार शक म्लेच्छों से किया था। विशाखदत्त के इस श्लोक का अंकन इस दृश्य में है—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपाम्।
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री॥

म्लेच्छाउद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
स श्रीमद्बंधु भृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चंद्रगुप्तः॥

इसमें कवि ने अधुना) चन्द्रगुप्त (चन्द्र=स्वर्ण, चन्द्रगुप्त=हिरण्यगर्भ) राजा की विष्णु से तुलना की है। जैसे विष्णु ने इस पृथ्वी का उद्धार म्लेच्छ (असुर) से किया उसी प्रकार दन्तकोटि शस्त्र से मारकर म्लेच्छ से चन्द्रगुप्त पार्थिव ने भारत भूमि और ध्रुव (पृथ्वी) देवी का उद्धार किया। दोनों को रूप बदलना पड़ा था। चन्द्रगुप्त ने शक्ति (ध्रुवदेवी) का रूप पकड़ा और विष्णु ने शूकरी-तनु धारण किया।

गुप्तकाल में शिव-परिवार में स्कंद का बहुत महत्व था। गुप्त सम्राटों ने देव सेनापति को विशेष आदर दिया जैसा कि स्कंद गुप्त, कुमार गुप्त नामों से प्रकट है। उदयगिरि की गुहा नं० ३ और ६ में अत्यन्त सुन्दर स्कंद प्रतिमाएं बनी हुई हैं। गुहा नं० ३, ६ तथा १७ में गणेश की प्रतिमाएं भी हैं। इन गणेश प्रतिमाओं पर शास्त्रीय लांछनों के अभाव के कारण इन्हें गणेश की प्राचीनतम प्रतिमाओं में माना गया है।

यहां उदयगिरि की उस गंगा-मूर्ति का उल्लेख भी आवश्यक है जो अब अमरीका के बोस्टन संग्रहालय में चली गई है। यह गुहा नं० १७ के द्वार की मूर्ति ज्ञात होती है। भारतीय मूर्तिकला का यह अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है।

उदयगिरि के अतिरिक्त भी विदिशा में गुप्त कालीन अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बेसनगर में प्राप्त नृसिंह मूर्ति, महिष-मर्दिनी की विशाल प्रतिमा और स्कंद प्रतिमा तत्कालीन मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

जैन प्रतिमा निर्माण का उल्लेख भी उदयगिरि गुहा में है। बीसवी गुफा के एक शिलालेख में लिखा है "प्रसिद्ध गुप्त वंशीय श्री संयुक्त

एवं सपन्न राजाओं के समृद्धिमान काल के १०६ वे वर्ष (ई० स० ४२८) के कार्तिक कृष्ण ५ के शुभ दिन को शमदम युक्त शंकर नामक व्यक्ति ने सर्प फणों से भयंकर (दिखनेवाली) जिन श्रेष्ठ पार्श्वनाथ की मूर्ति गुहा द्वार में बनवाई।" यह प्रतिमा नष्ट हो चुकी है, केवल सर्प फणों का छत्र शेष रह गया है। बेसनगर में भी एक विशाल जैन प्रतिमा गुप्त-कालीन प्राप्त हुई है जो गूजरीमहल संग्रहालय में सुरक्षित है।

गुप्तकालीन स्तभ शीर्षों का प्रतिनिधित्व भी उदयगिरि का चार सिंहों युक्त स्तभ शीर्ष करता है। चार सिंहों के नीचे बारह राशियाँ अंकित हैं। बेसनगर में भी एक स्तभ शीर्ष का खंड मिला है। यह चौकी है और चारों ओर के पार्श्वों में दो सिंहों के बीच एक वृक्ष का अलंकरण है।

उपसंहार

प्राचीन विदिशा के ध्वंस का इतिहास आज भी अज्ञात है। भैल स्वामी के मंदिर के कारण इसके एक भाग का नाम भेलसा पड़ा। एक शिलालेख में इसका नाम 'भाम्वत' भी दिया गया है। वेस नामक छोटासा ग्राम वेस्सा नगर और विदिशा के गौरवशाली नाम का ध्वंसावशेष अब भी वहन कर रहा है। उदयगिरि अपने प्राचीन नाम एवं कला कृतियों को लिए अब भी गर्व से मस्तक ऊंचा किए खड़ा है। अनेक राजपूत राजाओं, पठानों तथा मुगलों की स्मृतियां भी भेलसा में सुरक्षित हैं। जिस प्रकार चर्चिका अथवा विजया देवी के मंदिर को मुगलकाल में बीजामंडल मस्जिद बना दिया गया, इसी प्रकार भेलसा का नाम भी आलमगीरपुर रखने का प्रयास किया गया। यह प्रयास सफल न हुआ और भेलसा आज भी भेलसा बना रहा।

विदिशा का इतिहास आज पुकार पुकार कर कह रहा है कि इस स्थान के विपद अन्वेषण की आवश्यकता है, यहां की कला कृतियों को संरक्षण की आवश्यकता है, और उसके विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

पद्मावती

प्रारंभिक

ग्वालियर के दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग चालीस मील की दूरी पर पद्म पवाया, धूम पवाया अथवा पवाया (वास्तविक उच्चारण पवांय) के नाम से एक ग्राम बसा हुआ है। जनश्रुति यह है कि कभी पवाय उलट गई थी। उसके सब निवासी उसमें दब गए और गभोई वैश्य तथा भार्गव ब्राह्मण की युगल जोडी ही निकल सकी और इधर-उधर बुन्देलखण्ड में फल गई और फिर कभी अपने मूल-स्थान में वापस न पहुंच सकी। संयोग आया और एक दिन वर्षा काल में भार्गव ब्राह्मण और गभोई वैश्य (लेखक तथा उनके गभोई मित्र श्री मोतीलाल गुप्त) की एक जोडी पवाया पहुंची। भादों की प्रबल पारा (पार्वती) मदमाती मार्ग रोके खडी थी। जोडी बिछुड गई। गभोई मित्र इस पार रह गए, और ब्राह्मण अकेला उलटे घड़े के सहारे पारा पार कर उस पार पहुंचा और इस प्रकार इस प्राचीन महान् नगरी के भग्नावशेषों के दर्शन प्रथम बार किये।

जिस ओर दृष्टि डालिए, पुरानी ईंटों के अम्बार दिखाई देते हैं, कहीं कोई भग्न मृण्मूर्ति, कहीं प्राचीन मृत्तिका-पात्र के खण्ड और कहीं दो सहस्र वर्ष पुरानी मुद्राएँ तक सहज ही भूमि स्तर पर ही प्राप्त हो जाती हैं। प्राचीन मधुवन के उत्तरी भाग में सिन्धु और पारा (आधुनिक पार्वती) के संगम पर, जहां से कुछ ही दूर उत्तर की ओर मधुमती (महुअर) की धारा सिन्धु में मिलकर अपर त्रिवेणी का निर्माण करती है तथा कुछ और आगे लवण (आधुनिक नोन) नदी भी आकर मिलती है, प्राचीन पद्मावती, मालव यौधेय गण, शुंग, नाग, कुषाण, गुप्त, राजपूत और मुसलिम राज्यों के अवशेष अंक में लिए विस्मृति के गर्त में सोई पड़ी है। जनश्रुति में प्रख्यात पद्मावती के विध्वंस की स्मृति भार्गव ब्राह्मण और गभोई वैश्य के महाभिनिष्क्रमण की कथा का मूल तो न मिल सका परन्तु यशस्विनी पद्मावती ही आज की जीर्ण शीर्ण पवांय है, इसमें ऐतिहासिक कोई सन्देह नहीं रहा है।

पद्मावती का स्थल

विष्णु पुराण में नाग वंशज राजाओं की तीन राजधानियां बतलाई गई हैं.—

नवनागाः पद्मावत्यां कान्तिपुर्यां मथुरायां ।

पद्मावती, कांतिपुरी और मथुरा तीन नगर नव नागों की राजधानियां गिनाई गई हैं। इन में से मथुरा तो आज वर्तमान है। कान्तिपुरी के स्थान के विषय में आरंभ में कुछ मत भेद था, परन्तु अब यह संदेह नहीं रहना चाहिए कि यह कांतिपुरी मध्यभारत के मुरैना जिले में स्थित कुतवार नामक ग्राम के स्थल पर स्थित थी। यह केवल दुर्भाग्य ही है कि डॉ० अल्तेकर जैसे विद्वान ने भी अपनी पुस्तक 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इन्डियन पीपुल' में बिना किसी अन्वेषण के केवल श्री काशीप्रसाद जायसवाल के कथन के आधार पर 'कवित' को कान्तिपुरी का स्थल माना है। इस विषय पर हम विस्तृत रूप से अपनी पुस्तक 'ग्वालियर राज्य के अभिलेख' में विवेचन कर चुके है। जो हो पद्मावती के स्थल के विषय में अब कोई संदेह नहीं रहा है।

कुछ समय पूर्व प्रसिद्ध विद्वान श्री विल्सन ने अपनी पुस्तक "थियेटर ऑफ दि हिन्दूज" में पद्मावती को उज्जैन बतलाया, फिर उसे बरार के पद्मपुर से अभिन्न माना और अंत में भागलपुर के निकट बतलाया। नाग राजाओं के सिक्के नरवर (शिवपुरी जिला) में भी मिलते हैं। इस आधार को लेकर श्री एलेक्जेण्डर कनिंघम ने नरवर को पद्मावती माना। नरवर पवाया से लगभग ४० मील पश्चिम में है। कनिंघम ने सिन्धु, मधुअर, पार्वती और नोन नदियों को 'मालती माधव' में उल्लिखित सिन्धु, मधुमती, पारा तथा लवण नदियाँ माना है। कनिंघम का नदियों का यह अनुमान सत्य था, और इसी आधार को लेकर

धार के दिवंगत विद्वान् श्री लेले ने महाकवि भवभूति के नाटक 'मालती माधव' में वर्णित पद्मावती की भौगोलिक स्थिति का विवेचन कर आपने 'मालती माधव सार आणि विचार' में सर्व प्रथम यह स्थापना की कि पवाया ही प्राचीन पद्मावती है। इसकी पुष्टि सन १९१५ १६ की भारतीय पुरातत्त्व विभाग के वार्षिक विवरण में एक विस्तृत लेख द्वारा भूतपूर्व ग्वालियर राज्य के पुरातत्त्व विभाग के संचालक स्वर्गीय श्री मो० ब० गर्दे ने की। आज यह प्रश्न अब निर्विवाद हो गया है।



पद्मावती का रूप – साहित्य में

महाकवि भवभूति ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'मालती माधव' की रंगस्थली पद्मावती नगरी को बनाया है। इस ग्रन्थ में कवि ने पद्मावती का अत्यन्त सजीव एवं विशद वर्णन किया है। पद्मावती के वन, उपवन, उद्यान, नदी पर्वत और उसमें निवास करनेवाले नागरिक; उनके आमोद-प्रमोद उनकी सामाजिक स्थिति, धार्मिक विश्वास, यहाँ तक कि पशु-पक्षी और वृक्षों तक का वर्णन इस नाटक में है। इस नाटक के पढ़ने से भवभूति की समकालीन पद्मावती सजीव होकर मानस चक्षुओं के सामने आजाती है। यह वास्तव में एक सुन्दर संयोग है कि इतने बड़े महाकवि की लेखनी ने इस प्राचीन नगर के वर्णन को चिरस्थायी बना दिया। प्राचीन पद्मावती के ध्वंसावशेषों पर खड़ा आज का नागरिक इन ध्वंसावशेषों के अध्ययन से कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का भले ही पता लगाले, परन्तु यह केवल किसी नर कंकाल की खोज के सदृश्य ही होता और उनसे वह उस रूप-माधुरी एवं वैभव का पूर्ण आभास दिलाने में असमर्थ होता जो काल के कराल हाथों ध्वस्त किये जाने के पूर्व इस मनोरम नगरी को आवृत्त किये थे। यह पूर्ण रूप के दर्शन इस महाकवि के प्रसाद से ही संभव हुआ है। भवभूति अपने इस नाटक में पद्मावती की नदियों का वर्णन न करता तब तो पद्मावती के वास्तविक स्थल की निश्चित खोज भी संभव न हो सकती और बेचारी पवाया उपेक्षित ही रहती।

मालती माधव के नवें अंक में भवभूति ने ऐसी योजना की है कि नाटक की एक पात्री सौदामिनी एक ऊँचे टीले पर चढ़कर आस-पास के दृश्यों का वर्णन करती है। इस वर्णन के द्वारा पद्मावती की भौगोलिक स्थिति पूर्णतः प्रकट होती है। सौदामिनी कहती है कि वह श्री पर्वत से चलकर पद्मावती आ पहुंची है। यह श्री पवत कहीं पद्मावती के आस-पास हो या क्योंकि उसके कथानुसार उसे श्री

पर्वत से पद्मावती आने में अधिक समय नहीं लगा। इसी श्री पर्वत पर उस समय कापालिकों का केन्द्र था। इसी नाटक के प्रथम अंक में सौदामिनी के लिये लिखा है कि उसने कोई अद्भुत मन्त्र सिद्ध कर कापालिक वृत धारण किया है तथा श्री पर्वत पर रहती है। इसी श्री पर्वत से एक और कापालिक मुण्डमाला धारी अघोरघट का भी पद्मावती के श्मशान में स्थित कराला काली के मन्दिर में आने का उल्लेख है। अतएव पद्मावती के पास ही कापालिकों का केन्द्र यह श्री पर्वत था।

आगे पद्मावती का वर्णन करते हुए सौमादिनी कहती है कि सिन्धु और पारा नदियों के बीच पद्मावती नगरी शोभित है, सब दिशाओं में निर्मल जल धारण कर उसकी छटा दिव्य हो रही है। चारों ओर ऊँची अट्टालिकाएँ फैली हुई हैं। दोनों ओर दूब के वन हैं, जिनमें वत्सयुक्त गाएँ सुख से चर रही हैं। दूसरी ओर सिन्धु नदी का जल-प्रपात है जो घन-गर्जन के समान ध्वनि करता है, जिसकी प्रतिध्वनि आसपास के गिरिनिकुंजों में होती है। पर्वतों पर चम्पक, चन्दन, अश्वकर्ण, पाटल आदि वृक्ष शोभा पा रहे हैं। आगे थोड़ी दूर चलकर मधुमती और सिन्धु नदियों का संगम हो रहा है जहां पर भगवान भवानीपति देव देव सुवर्ण बिन्दु की पुण्य प्रतिमा है, जिसके विषय में यह कहा जाता है कि वह मानव द्वारा प्रतिष्ठित न होकर स्वयम्भू है। निकट ही पर्वत माला पर श्याम घन छाए हुए हैं और मयूरी निरंतर कूक रही है। अनेक प्रकार के पक्षी वृक्षावलियों पर बैठे हुए हैं। पहाड़ों की कन्दराओं में वन्य पशु बोल रहे हैं।

आज भी पवाया के खण्डहरों में खड़े होकर पद्मावती की अट्टालिकाओं के अवशेषों को घेरे हुए इन नदियों एवं पर्वतों को देखा जा सकता है। पास ही सिन्धु का जल प्रपात भी है। सिन्धु तथा मधुमती (महुअर) के संगम पर आज भी शिव मंदिर विद्यमान है। यह मंदिर

गया है, परन्तु ज्ञात होता है कि प्राचीन शिवालय के स्थान पर ही है।

इस नाटक में सुवर्ण बिन्दु महादेव के अतिरिक्त एक और शिवालय का उल्लेख है। कराला काली के मंदिर में अघोरघंट और उसकी शिष्या कपालकुंडला द्वारा की जाने वाली नरबलि के प्रयास का भी वर्णन किया गया है। इस मांत्रिक कापालिक ने इस कार्य के लिए मंत्री की कन्या को ही चुना। बौद्ध धर्म अपनी अवनत अवस्था में दिखाया गया है। तथागत गौतम बुद्ध के अनुयायियों के बौद्ध मठ की अध्यक्षा कामंदकी अपने धार्मिक कृत्यों से विमुख मालती और माधव में प्रेम पोषण कराने और उनका गांधर्व विवाह कराने की योजना बनाने में व्यस्त दिखाई गई हैं। उसकी एक शिष्या बुद्धरक्षिता मदयंतिका और मकरंद का विवाह कराने के प्रयास में व्यस्त है। माधव का सेवक कलहंस विहार की दासी मंदारिका से प्रेम करता है। इस प्रकार पद्मावती के शैव, शाक्त और बौद्ध धर्मों की झांकी हमारे सामने आती है। इनके अतिरिक्त किसी नगर-देवी के मंदिर का भी उल्लेख आया है।

मालती माधव नाटक से ज्ञात होता है कि पद्मावती शिक्षा का भी बहुत बड़ा केन्द्र थी। यद्यपि विदर्भ देश की राजधानी कुंडलपुर में भी बहुत बड़ा महाविद्यालय था, जहां पद्मावती के महामंत्री विदर्भ के महामंत्री तथा कामंदकी और सौदामिनी के साथ सह-पाठी रहे थे। फिर भी कुण्डलपुर के महामंत्री का पुत्र माधव पद्मावती में न्यायशास्त्र का अध्ययन करने आया था।

इस नाटक से पद्मावती में वर्षा ऋतु में मनाए जाने वाले मदन-महोत्सव का भी वर्णन है। यह मदन महोत्सव मदनोद्यान में नगर की सुन्दरियों द्वारा मनाया जाता था, जिसे देखने के लिए पुरुष जा सकते थे। नगर में संगीत शाला भी थी और युवतियां चित्रकला में भी प्रवीण थीं।

महाकवि भवभूति के इस नाटक का कथानक काल्पनिक है, परन्तु

नगर और उसके आस पास की स्थिति के वर्णन में कल्पना ने अपनी कारीगरी नहीं दिखाई है और वे सब पूर्णत वास्तविक हैं। यहां तक कि पाटलावती नदी जिसमें मकरंद डूब मरने को तयार हुआ था तथा मधुमती के किनारे का वह शिखर जहां से कूद कर कामन्दकी प्राण विसर्जन करने पर उतारू हो गई थी आज भी पहचाने जा सकते है।

परिवर्तनशील प्रकृति के पट पर से महाकाल के क्रूर करों ने पद्मावती नगरी की वे विशाल अट्टालिकाएँ, राजभवन, राजपथ सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिये, वह उत्सव आयोजनों म निमग्न मानव समूह चला गया यौवन के उन्मद प्रेम के चरणों में प्राणों की बलि देने वाले युवक युवतियों की मंडली भी कथा शेष रह गई, आस पास के गहन वन भी समाप्त हो गए, विद्यादान का वह महान केन्द्र, न्याय शास्त्र के पीढ़ियों की सभा और उनकी परम्परा छिन्न-भिन्न एवं नष्ट होगई। शेष रह गये उनके ये खण्डहर जिनके बीच खड़े होकर भवभूति द्वारा वर्णित इस महा नगरी के वैभव के दर्शन मानस चक्षुओं द्वारा उस भादों की दोपहरी में हमने किए थे।

महाकवि भवभूति का समय ईसवी सातवीं शताब्दी के अन्त में अथवा आठवी शताब्दी के प्रारंभ में माना जा सकता है। इनका जन्म विदर्भ (बरार) के पद्मपुर नगर में हुआ था और कान्य कुब्ज (कन्नौज) के परम पराक्रमी मौखरी यशोवर्मन के वे राजाश्रित थे। भवभूति ने पद्मावती का जैसा सजीव तथा यथा तथ्य वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि वे इस नगरी में बहुत समय तक रहे, संभव यह है कि वे अध्ययन के लिए आए हों। वैसे तो मौखरी यशोवर्मन के राज्य में यह प्रदेश था, इस कारण भी वे यहां वैसे भी आ सकते थे।

इससे यह सिद्ध है कि ईसवी आठवी शताब्दी तक पद्मावती अत्यन्त समृद्ध नगरी थी।

'मालती माधव' नाटक के पश्चात् पद्मावती का वर्णन मालव मार्तण्ड महाराजा भोज विरचित 'सरस्वती कण्ठाभरण' में आया है। इस वर्णन में भी पद्मावती की भौगोलिक स्थिति और उसके वैभव एवं जीवन पर प्रकाश पड़ता है। सरस्वतीकण्ठाभरण का वह श्लोक निम्न प्रकार है:—

परः पराऽपारा तट भवि विहार. पुरवरं,।
ततः सिन्धुः सिन्धु. फणपतिपत्नं पावन मतः ॥
तदग्रो तूदग्रो गिरिभित पुरस्तस्य पुरतो।
विशाला शालाभिललितललनाभिर्विजयते ॥

विस्तृत पारा (पार्वती) के किनारे अनेक बौद्ध विहारों युक्त पुर के पास समुद्र के समान पवित्र करने वाली सिन्धु नदी है। वहां फणपति (नागों) का वन है। पर्वतों के समान उत्तुंग शिखरों से मण्डित विशाला नगरी के भवनों में सुन्दर रमणियाँ विहार करती हैं।

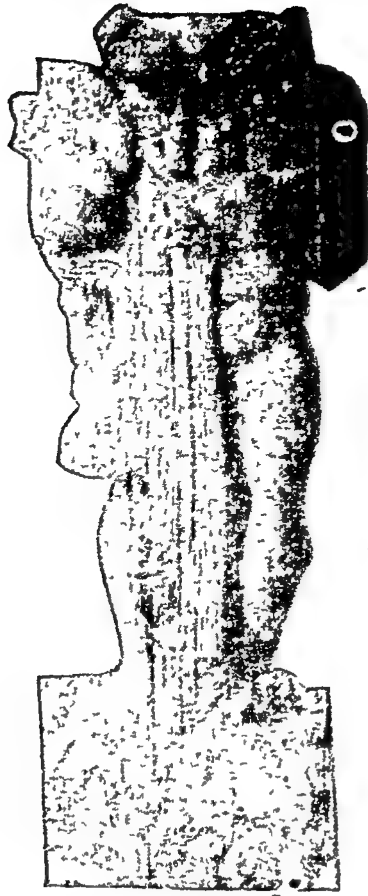
ईसवी ग्यारवीं शताब्दी में विचरित इस श्लोक में वर्णित पद्मावती मालती माधव की पद्मावती के समान ही समृद्धिशालिनी थी।



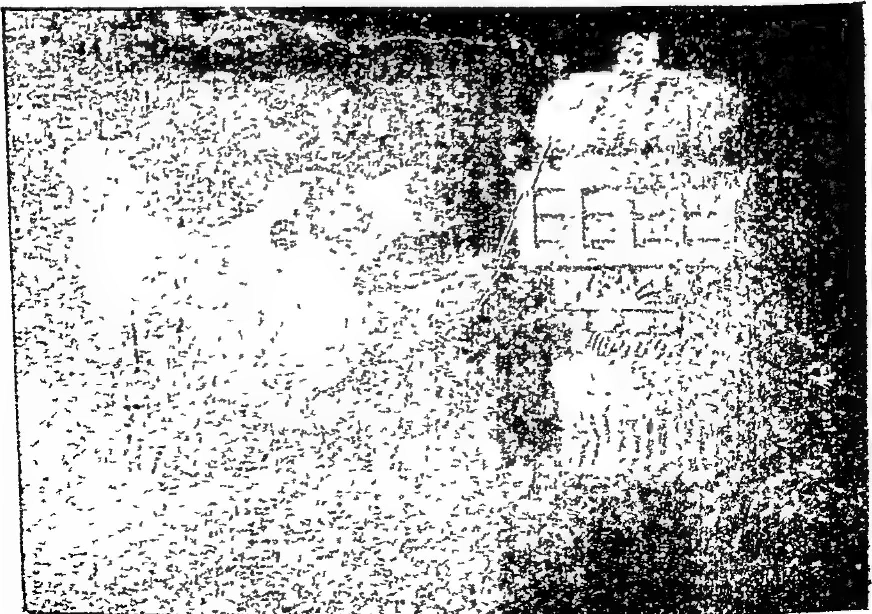
उदयगिरि पर गुहा नं० ६ के द्वार पर विष्णु प्रतिमाएँ (पृष्ठ ३३)



उदयगिरि गुहा का द्वार



मणिभद्र यक्ष (पृष्ठ ५० तथा ५७)



मकर स्तंभ विदिशा (पृष्ठ २६)

शिलालेखों में पद्मावती

मालती माधव और सरस्वती कण्ठाभरण के पद्मावती के वर्णनों के समान ही इस नगरी का विस्तृत एवं विशद वर्णन खजुराहो में प्राप्त वि०,सवत् १०५८ (ईसवी सन् १०००-१) के एक शिलालेख में मिलता है। इसमें उल्लेख है —

आसीदप्रतिमा विमान भवनैराभूषिता भूतले,
ख्याकानामधिपेन भूमिपोतेना पद्मोत्यवशेन या।
बनावीह निवेशिता कृतयुगे त्रेतान्तरे श्रूयते,
सन्ख्याग्रे पठिता पुराण पटुभि पद्मावती प्रोच्यते॥
सौधोत्तुंग पतगलघन पथप्रोत्तु गमालाकुला।
शुभ्राभ्र कष पाण्डुरोच्य शिखरप्राकारचिभ्राम्बरा।
प्रालयाचल शृंग सन्निभशुभ प्रासाद पद्मावती,
भव्यापूर्वमभूतपूर्व रचना या नाम पद्मावती॥

सारांश यह है कि पृथ्वी तल पर एक अनुपम नगर था जो ऊँचे-ऊँचे भवनों से शोभित था और जिसके सम्बन्ध में यह लिखा मिलता है कि इसकी स्थापना कृत और त्रेतायुग के बीच पृथ्वी के शासक उस नरेन्द्र द्वारा हुई थी जो पद्मवंश का था। इस नगर का इतिहासों में उल्लेख है और पुराणों के पण्डित इसे पद्मावती कहते हैं। पद्मावती नामक इस सुन्दर नगरी की रचना अभूतपूर्व रूप से हुई थी। इसमें बहुत बड़े बड़े और ऊँचे भवनों की बहुतसी पंक्तियाँ थीं, इसके राजमार्गों पर बहुत बड़े बड़े घोड़े दौड़ते थे, इसकी प्राचीर कान्तियुक्त, स्वच्छ, शुभ्र और गगनचुम्बी थी, यह आकाश से बातें करती थी और इसमें ऐसे बड़े बड़े विशाल भवन थे जो पर्वतों की तुषारमंडित चोटियों के समान शान पड़ते थे।

खजुराहो के इस लेख में पद्मावती का जो वर्णन है उसकी 'मालती-

माधव' एवं 'सरस्वती कण्ठाभरण' के वर्णनों से तुलना करने पर इनकी संभावना स्पष्टत: ज्ञात होती है। इन तीनों वर्णनों में पद्मावती नगरी के वैभव एवं समृद्धि का दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है।

पद्मावती के ध्वंसावशेषों में प्राप्त शिलालेख भी इस नगर के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं और उसके नागरिक जीवन पर भी प्रकाश डालते है।

इन लेखों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मणिभद्र यक्ष की चरणचौकी पर खुदा हुआ लेख है। छह पंक्तियों का यह लेख नीचे लिखे अनुसार है:—

(१) राज्ञः स्वामि शिवनन्दिस्य संवत्सरे चतुर्थे ग्रीष्म पक्षे द्वितीये २ दिवसे।

(२) द्वादशे १०२ एतस्य पूर्वाये गोष्ठ्या मणिभद्रभक्ता गर्भ सुखिता: भगवतो

(३) माणीभद्रस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापयन्ति गौष्ठ्यम भगवाऽनु बल वाचं कल्याणाभ्यु

(४) दयम च भीतो दिशतु। ब्राह्मणस्य गोतमस्य कुमारस्य ब्राह्मणस्य रुद्रदासस्य शिवत्रदाये

(५) शामभूतिस्य जीवस्य खजबलस्य शिवनेमिस्य शिवभद्रस्य कुमस्य धनवे।

(६) धरस्य श्री

स्वामी शिवनन्दी के राजा के चौथे वर्ष में मणिभद्र भक्तों की गोष्ठी ने यह मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की ऐसा इस अभिलेख में

स्पष्ट है। इस अभिलेख की लिपि को लिपिशास्त्र के विद्वान ईसवी प्रथम शताब्दी की मानते हैं। नाग राजाओं का यह एकमात्र अभिलेख है और इसके आधार पर नागवंश के इतिहास को सुदृढ़ आधार मिला है। इस लेख में शिवनन्दी को "स्वामी" लिखा है जो प्राचीन अर्थों में स्वतंत्र राजा के लिए लिखा जाता है। ईसवी सन् ७८ के लगभग कुषाण सम्राट कनिष्क ने पद्मावती के नागों को पराजित किया था। इस शिवनन्दी नाग के राज्यारोहण के चौथे वर्ष पश्चात् यह प्रतिमा बनी हुई थी।

इस अभिलेख से ईसवी प्रथम शताब्दी में पद्मावती में प्रचलित यक्षपूजा का प्रमाण भी मिलता है। शैव नागों की प्रजा को अपने विश्वास के अनुसार आराधना करने की स्वतन्त्रता थी।

गुप्तकालीन एक ईंट पर गुप्तलिपि में गंगादत्त के पुत्र सोमदत्त का नाम भी पवाया में लिखा मिला है। यह नाम कारीगर का है या राजा का कुछ ज्ञात नहीं होता। ब्राह्मी लिपि का एक और गुप्त लिपि के दो और अभिलेख कोई विशेष जानकारी नहीं देते। मातृका, नाग, यक्ष, आदि की पूजा का मूल श्री आनन्दकुमार स्वामी द्राविड़ सभ्यता में मानते हैं। मूल कहीं भी हो, परन्तु यह स्पष्ट तो निश्चित है कि यक्षपूजा को बौद्धों ने भी अपनाया। मातृका, नाग यक्ष आदि की पूजा आगे चलकर भारत के विभिन्न सम्प्रदायों का अंग बनगई। मणिभद्र यक्ष की यह मूर्ति और कुबेर की अनेक मूर्तियां इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

पवाया के खण्डहरों में एक और शिलालेख मिला है, परन्तु वह दूसरे प्रकार की ही कहानी कहता है। यह पत्थर एक ग्रामवासी के घर में मिला था। इसमें नागरीलिपि और फारसी भाषा में एक पद्यबद्ध लेख है। इसके अनुसार दिल्ली के सिकन्दर लोदी के राज्य काल में सफदरखां वजीर की आज्ञा से अस्कदाबाद किले की नींव हिजरी सन् ९११ (सन् १५१२) के रजब मास के शनिवार को रखी जाकर उसका

निर्माण किया गया। सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर के तँवरों पर अनेक आक्रमण किये और नरवर गढ़ को जीत लिया था। ग्वालियर के तँवरों के उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर लोदियों ने अपनी दृढ़ छावनियाँ बनाईं। उत्तर में आगरे पर तथा दक्षिण में नरवर पर लोदियों के सैन्य केन्द्र बने। नरवर जीतने के पश्चात् सफदर खाँ शहां का लोदियों की ओर से हाकिम बनाया गया। इसने पद्मावती के नाम को भी लुप्त कर डालना चाहा। अपने राजा सिकन्दर लोदी के नाम पर इस किले का नाम सिकन्दराबाद रखने का प्रयास किया गया, परन्तु यह नाम लोकमानस में स्थान न पा सका। पद्मावती ने पवाय नाम स्वीकार कर लिया, परन्तु सिकन्दराबाद नाम ग्रहण न किया।

पद्मावती की मुद्राएँ और नागवंश

पद्मावती निश्चय ही भारत के अत्यन्त प्राचीन नगरों में है। प्राचीन काल में यह मथुरा और विदिशा के बीच के राजमार्ग पर प्रधान नगरी रही है। परन्तु पद्मावती पर अब तक की खोज में ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी के पूर्व की कोई वस्तु प्राप्त नहीं हुई है।

ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी की गण राज्यों की अनेक मुद्राएँ पद्मावती के भग्नावशेषों में प्राप्त हुई हैं। उस समय विदिशा और उज्जयिनी में जिन गण राज्यों का उदय हुआ था उनकी शृंखला पद्मावती तक थी।

पद्मावती के इतिहास का स्पष्ट अवतार तो वास्तव में नागवंश के राज्य काल से प्राप्त होता है। विदिशा के नागों ने धीरे धीरे अपना राज्य विस्तार उत्तर में मथुरा तक कर लिया था और आगे चलकर उत्तर में मथुरा, मध्य में कान्तिपुरी (कुतवार) और दक्षिण में पद्मावती इनके शासन के केन्द्र बने।

पद्मावती में नाग राजाओं की मुद्राओं का बहुत बड़ा भण्डार दबा पड़ा है। प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में चरवाहे अगणित नाग मुद्राएँ एकत्रित करते हैं और इन 'छदामों' को किसी भी यात्री के हाथ कुछ पैसों में बेच डालते हैं। भारतीय इतिहास के निर्माण की यह अत्यन्त बहुमूल्य सामग्री न जाने कितने परिमाण में अबतक अनाड़ी हाथों में निकल चुकी।

इन मुद्राओं से जो नाग राजाओं के नाम अब तक ज्ञात हुए हैं— (१) भव (२) भीम (३) बृहस्पति (४) देव (५) गणपति या गणेन्द्र (६) [illegible] (७) वसु (८) विभु और (९) वृष। इन नाग मुद्राओं पर [illegible] वृष, [illegible]त्रिशूल, मयूर तथा चक्र के चिह्न हैं। ऊपर लिखे नामों के आगे इन मुद्राओं में नाग शब्द जुड़ा हुआ है अतएव

स्पष्ट ही ये नागवंशीय राजाओं की मुद्राएँ हैं। इनके अतिरिक्त प्रभाकर और वीरसेन दो नरेशों की मुद्राएँ और प्राप्त हुई हैं जो आकार-प्रकार में नाग मुद्राओं से मिलती जुलती है तथा इन पर सिंह और वृष बने हुए हैं।

पद्मावती में प्राप्त इन मुद्राओं एवं मणिभद्र यक्ष के प्रतिमा लेख तथा पुराणों के अध्ययन के आधार पर भारत के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश के इतिहास की रूप रेखा का निर्माण किया गया है। ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ईसवी प्रथम शताब्दी का भारतीय इतिहास का काल अत्यन्त अस्पष्ट और पेचीदा है। शुंगों के समय में ही कलिंग और आन्ध्र राज्य प्रबल होगए थे। उत्तर-पश्चिम में गांधार और तक्षशिला पर विदेशी यवन जोर पकड़ रहे थे। शुंगों के पश्चात उत्तर-पश्चिम में यवन राज्य अवन्ति-आकर पर घात लगाए रहते थे। धीरे धीरे इनके आक्रमण प्रारंभ हुए और सातवाहन, नाग, मालव-क्षुद्रक सबको मिलकर या अकेले इनका सामना करना पड़ा। इस राजनीति का धार्मिक क्षेत्र में भी एक विशेष प्रभाव पड़ा। बृहद्रथ मौर्य तक बौद्ध धर्म भारत का ही एक धर्म था। अब बौद्ध धर्म को इन आक्रान्ताओं ने अपनाया और बौद्ध आचार्यों ने उन्हें मान्यता दी। अतएव धार्मिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक कारणों से भी हिन्दू धर्म के अनुयायियों को बौद्ध धर्म का विरोध करना पड़ा।

नागों के राजवंश को हम तीन भागों में बांट सकते हैं, शुंगों के समकालीन, शुंगों से कनिष्क तक और कुषाणों के पराभाव के पश्चात वाकाटकों तक। पहली शाखा विदिशा तक सीमित थी। उसके विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है, केवल पुराणों में उनका उल्लेख है। शुंगों के पश्चात नागों ने अपना राज्य विदिशा से पद्मावती तक फैला लिया था। पुराणों और सिक्कों के आधार पर उनकी वंशावली निम्नलिखित निर्धारित की गई है:—

शेष	ई० पू० ११०—९०
भोगिन्	ई० पू० ९०—८०
रामचन्द्र	ई० पू० ८०—५०
धर्म वर्मन	ई० पू० ५०—४०
वगर	ई० पू० ४०—३१
भूतनन्दी	ई० पू० २०—१०
शिशुनन्दी	ई० पू० १० से २५ ईसवी
यशनन्दी	ईसवी २५ से ईसवी ३०
पुरुषदात	३० ई० से ७८ ईसवी तक
उत्तमदात	के ५ राजा सिक्कों और
कामदात	लेखों के आधार पर
भवदात	
शिवनन्दी या शिवदात	

पिछले पाँच राजा सम्भवतः केवल पद्मावती तक ही सीमित रह गए थे। अन्तिम राजा शिवनन्दी कनिष्क द्वारा पराजित हुआ ऐसा अनुमान किया जाता है। मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा की चरण चौकी पर खुदे अभिलेख में इसके राज्यारोहण के चौथे वर्ष में उसे स्वामी लिखा है अतः तब तक वह स्वतन्त्र नरेश था और उसके पश्चात उसे कनिष्क ने हराया। यह घटना सन् ७८ ईसवी की है। ईसवी सन् ७८ से १७५ ई० तक नागों को मारे मारे भटकना पड़ा और इस बीच वे मध्यप्रदेश के पुरिका एवं नागपुर स्थानों में रहे।

कुषाणों का अन्तिम सम्राट वासुदेव था। ईसवी सन् १७५ में वीरसेन नाग ने इसे हराकर मथुरा में नाग राज्य स्थापित किया। इस नवीन नागवंश को पुराणों में 'नवनाग' कहा गया है जिनकी राजधानियाँ मथुरा पद्मावती और कान्तिपुरी थीं। इन नवनागों में से नीचे लिखे नाम ज्ञात हुए हैं।

भीम नाग	(सन् २१०—२३० ई०)
स्कन्द नाग	(सन् २३०—२५० ई०)
बृहस्पति नाग	(सन् २५०—२७० ई०)
व्याघ्र नाग	(सन् २७०—२९० ई०)
देव नाग	(सन् २९०—३१० ई०)
गणपति नाग	(सन् ३१० ३४४ ई०)

गणपति नाग का राज्य धारा नगरी तक था। भावशतक नामक ग्रन्थ में गणपति नाग को 'धाराधीश' लिखा है। इन पिछले नागों के के सिक्के विदिशा में भी मिले हैं। नागों के साम्राज्य में वर्तमान भरतपुर, धौलपुर, मुरैना, ग्वालियर, उज्जैन, मालवा भेलसा तथा सागर के आसपास के प्रदेश थे और यमुना से नर्मदा तथा चम्बल से केन के बीच का भूभाग इनके आधीन था।

नागों के धार्मिक विश्वास पर भी उनकी मुद्राओं द्वारा तथा अन्य प्राप्त वस्तुओं से प्रकाश पड़ता है। नाग राजा परम शैव थे। वे शिवलिंग को अपने कंधे पर ही रखते थे और इस कारण भारशिव नाग कहलाए। इन शिवभक्तों ने अपने राज चिह्न के रूप में गंगा को अंगीकार किया और नन्दी को भी विशेष मान दिया। वृष की आकृतियां उनके सिक्कों तथा मंदिरों में विशेष रूप से पाई जाती हैं। वायु पुराण में नागों को शिव का नन्दी कहा गया है। पद्मावती में नन्दी की जो मानवाकार मूर्ति मिली है वह नागकालीन है और इन राजाओं के वृषत्व की प्रतीक है।

इन नागों की प्रजा यक्ष-यक्षिणियों की पूजा करती थी इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है।

गणपति नाग का उल्लेख उन राजाओं की सूची में है जिन्हें समुद्रगुप्त ने हराया। इस प्रकार नागों के वैभव, उनकी कला-सम्पत्ति तथा विकास के उत्तराधिकारी गुप्त सम्राट हुए।

पद्मावती के नागकालीन अवशेष

पद्मावती के खण्डहरों में नागकालीन अवशेष प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। मुद्राओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, अब यहां कुछ मूर्ति खण्डों का विवरण दिया जाता है जो पवाया पर प्राप्त हुए हैं और जिन्हें निश्चित ही नागकालीन माना गया है।

इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण ताड़-स्तम शीर्ष हैं। नागों को महाभारत में ताड़ध्वज कहा गया है और इनका यह राजचिन्ह इनकी मुद्राओं पर भी मिला है। जानखट में प्राप्त नागकालीन मंदिरों के अवशेष में ताड़ का अलंकरण भी मिला है। नागों की प्राचीन राजधानी विदिशा में ताड़ स्तमशीर्ष भी मिला है। ऐसी दशा में पद्मावती का ताड़ स्तमशीर्ष भी नागों के समय का ही है। ये स्तमशीर्ष या तो शिव मंदिरों के सामने बनाए गए होंगे या इन 'ताड़ ध्वज' नागों के आवासों में इनकी स्थापना की गई होगी। विदिशा और पद्मावती में प्राप्त ताड़-स्तमशीर्षों की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि विदिशा के ताड़ शीर्षों की बनावट अधिक सरल है अतएव वे तुलनात्मक रूप में पूर्व के हैं और पद्मावती का स्तम शीर्ष अधिक संश्लिष्ट है अतएव वह बाद का है। यह बात इतिहास के भी अनुकूल है क्योंकि विदिशा नागों की प्राचीन राजधानी है और पद्मावती बाद की।

पद्मावती की नाग छत्र युक्त राजा की मूर्ति नागकालीन ही हो सकती है। वीरसेन नाग के सिक्कों पर नाग की आकृति मिलती है। मानवाकार नन्दी के अतिरिक्त नागकालीन किसी शिव मंदिर के अवशेष अभी पद्मावती में नहीं मिले हैं। परन्तु अभी पद्मावती में जो खुदाई हुई है वह नगण्य ही कही जायगी।

शिव नन्दी के राज काल की मणिभद्र यक्ष की मूर्ति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसकी बनावट कुछ बेडौल है और यह मूर्ति

पूर्व मौर्य कालीन मूर्तियों की परंपरा की है। वास्तव में यह मूर्ति नागों के समय की लोक कला का उदाहरण है।

मध्यभारत के इस प्रतापी राजवंश का इतिहास अभी लिखा जाना है। इनके सिक्कों का अभी सम्यक अध्ययन नहीं हुआ। पवाया और कुतवार पर कोई विस्तृत अन्वेषण कार्य भी नहीं हुआ। जब तक यह सब नहीं होता तब तक भारत का यह ३०० वर्ष का इतिहास अधूरा ही रहेगा। हमारे प्राचीन इतिहास का कुछ अंश इसलिए नहीं लिखा जा सकता कि उसके लिए सामग्री नहीं है और इस काल का इतिहास इसलिए नहीं लिखा जा सकता कि हमारे वर्तमान शासन का इस ओर ध्यान नहीं है, उस पर वे कुछ व्यय करने की मनोवृत्ति उत्पन्न नहीं कर सके हैं।



विष्णु प्रतिमा पवाया(पृष्ठ ५६)



नन्दी पवाया (पृष्ठ १७)



सिंह चौकी पवाया



त्रिविक्रम पवैया (पृष्ठ ३०)

गुप्त कालीन पद्मावती

पद्मावती के अवशेषों पर जो कुछ अब तक प्राप्त हुआ है वह किसी विशेष प्रयास का परिणाम नहीं है। एक बार जो खुदाई ग्वालियर राज्य के समय कराई गई थी उससे ही कुछ सामग्री प्राप्त हुई है। कुछ सामग्री वैसे ही पड़ी मिल गई है। नागकालीन अवशेष भारतवर्ष में कम मिले हैं इसलिए पद्मावती के तत्कालीन अवशेष महत्वपूर्ण हैं। परन्तु गुप्त कालीन अवशेष विस्तृत खुदाई के अभाव में समस्त भारत के गुप्त कालीन अवशेषों की तुलना में अधिक महत्त्व पूर्ण नहीं दिखते। यह अवश्य है कि जो थोड़ा बहुत प्राप्त हुआ है वह अपनी विशिष्टता के कारण ध्यान आकर्षित करता है। कभी यदि पद्मावती के स्थल की पूर्ण खुदाई होगी तब निश्चय ही भारतीय इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण अध्याय जोड़े जावेंगे।

पद्मावती के गणपतिनाग को परास्त कर उसके विस्तृत राज्य को समुद्रगुप्त ने अपनी राज्य सीमा में मिलाया था। पद्मावती पर किसी गुप्तकालीन अभिलेख के अबतक प्राप्त न होने के कारण आज यह कहना सम्भव नहीं कि यहां गुप्तों की ओर से कौन शासक हुआ। परन्तु जो अवशेष मिले हैं और पद्मावती का जो उल्लेख काव्यों में है उनके आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि गुप्तों के राज्य काल में पद्मावती के वैभव में कमी नहीं आई थी।

पवाया पर गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर के अवशेष मिले हैं। विशाल काय ईंटों से निर्मित चबूतरा इसी मन्दिर का है। यहां पर प्राप्त प्रस्तर की विष्णु प्रतिमा और मन्दिर के तोरण का अत्यन्त सुन्दर दृश्यों सहित प्रस्तर खंड और अनेक मृण्मूर्तियां इसी मन्दिर के अवशेष हैं। मूल मन्दिर इस चबूतरे के ऊपर लकड़ी और खपड़ों से बनाया गया होगा,

ऐसा अनुमान है। इस प्रकार के मन्दिर अहिछत्रा के उत्खनन में भी प्राप्त हुए हैं। जो विष्णु प्रतिमा पवाया पर प्राप्त हुई है वह इसी मन्दिर में स्थापित होगी। उदयगिरि पर प्राप्त विष्णु प्रतिमाओं से यह प्रतिमा अधिक सरल है अतएव यह अनुमान है कि सम्भवतः यह प्रारंभिक गुप्त काल की हो।

इसी मन्दिर से सम्बन्धित वह तोरण प्रस्तर है जो अब गुजरी महल के पुरातत्त्व संग्रहालय में लाकर रख दिया गया है। इस तोरण पर बीच में अमृत मंथन तथा बलि वामन कथा के अंकन हैं। विष्णु का वामन रूप, फिर दो पग में समस्त पृथ्वी को नापने वाले त्रिविक्रम रूप और देवता तथा दैत्यों के सहयोग से किये गये समुद्र मंथन के दृश्य अत्यन्त विस्तार से बनाए गए है। एक ओर स्वामी कार्तिकेय की उभरी हुई मूर्ति का अंकन है।

परन्तु इस तोरण प्रस्तर एक कोने पर दो फीट लम्बे और दो फीट चौड़े भाग पर गीत नृत्य का जो दृश्य अंकित किया गया है वह छैनी के कौशल का तो अपूर्व प्रदर्शन है ही साथ ही तत्कालीन वेशभूषा, केश विन्यास, वाद्ययंत्र तथा नृत्य संगीत-साधना का प्रत्यक्ष रूप प्रस्तुत करता है। दुर्भाग्य से इसका ऊपर का बांया कोना टूट गया है। इस दृश्य के मध्य में एक स्त्री अत्यंत सुन्दर भाव भंगी में नृत्य कर रही है। स्तनों पर एक लम्बा वस्त्र बंधा हुआ है जिसका किनारा एक ओर लटक रहा है। बांए हाथ में पहुंचे से कोहनी तक चूड़ियां भरी हुई हैं। दाहिने हाथ में संभवत एक दो चूड़ियां ही हैं। कमर के नीचे अत्यन्त चुस्त धोती (या पाजामा) पहना हुआ है, जिसके दोनों ओर किंकणियों की झालरें लटक रही हैं। पैरों में सादा चूड़े हैं। कानों में झुमरदार कर्णाभरण हैं। इस स्त्री के चारों ओर नौ स्त्रियां विविध वाद्य बजाती हुई दिखाई गई हैं, परन्तु उनका प्रसाधन इतनी बारीकी से नहीं दिखाया गया। वे वाद्य बजाने वाली स्त्रियां गद्दियों पर बैठी है। वाद्यों में दो वाद्य तारों के हैं,

जिनमें दाहिनी ओर का वाद्य समुद्र गुप्त की मुद्रा पर अंकित वीणा के समान है और दूसरा वायोलिन की बनावट का है। एक स्त्री दपली जैसा वाद्य लिए है। उसके बाद एक स्त्री सम्भवतः चमरी अथवा पंखा लिए है। फिर एक स्त्री मंजीर बजा रही है। पुनः एक स्त्री बिना किसी वाद्य के बैठी है। इसके पश्चात मृदंग वादिनी है। कोने की टूटी हुई स्त्री मूर्ति के बाद वेणु वादिनी बनाई गई है। बीच में एक विशिष्ट प्रकार का दीपक जल रहा है। इन सब स्त्रियों के केशविन्यास भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। गुप्त काल के कलाकार ने कभी दो स्त्रियों का केशविन्यास एक सा नहीं दिखाया।

इस प्रकार के गीतनृत्य के दृश्य मध्यभारत की सीमाओं में चार स्थानों पर देखे गए हैं। पहला बेसनगर में प्राप्त मौर्यकालीन बौद्ध स्तूप की बाढ़ पर है, दूसरा उदयगिरि में वराह मूर्ति के एक ओर, तीसरा बाग गुहा के भित्तिचित्रों में और चौथा यह पवाया के तोरण पर। इन सब में अनेक समानताएँ हैं। एक तो ये मंडलियां स्त्रियों की हैं और दूसरे इनके वाद्य भी समान है। सम्भवतः प्रत्येक मंगल स्थल पर ये दृश्य अंकित किये जाते थे और तत्कालीन आनन्द मय जीवन के प्रतीक थे।

यहीं पीठ से पीठ लगाए दोनों ओर पुरुषाकृति का स्तंभ शीर्ष मिला है जो सम्भवतः सूर्य स्तंभ है। इस प्रकार के दोनों ओर मुखवाले स्तंभ शीर्ष एरण तथा सौ दनी (म दसौर) में भी मिले हैं। यह सूर्य स्तंभ सम्भव है पद्मावती के उक्त विष्णु मन्दिर का ही हो।

पद्मावती में प्राप्त मृण्मूर्तियां गुप्तकालीन कला में अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। 'मानसार' के अनुसार मूर्ति निर्माण का एक माध्यम मृत्तिका भी है। मृत्तिका द्वारा जीवन उपयोगी भांड निर्माण की कला बहुत पुरानी है। इन उपयोग की वस्तुओं को सौन्दर्य प्रदान करने की मानव की प्रवृत्ति सब स्थानों में और सब कालों में पायी जाती है। परन्तु केवल अलंकरण, मनोविनोद तथा क्रीड़ा के लिए मृण्मूर्तियां बनाने की प्रथा भी इस देश

में प्राग-ऐतिहासिक काल से प्रचलित रही हैं जैसा कि मोहन-जो-दाड़ो और हरप्पा पर प्राप्त मृण्मूर्तियों से सिद्ध है। उज्जैन तथा विदिशा पर कुछ मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। परन्तु जो गुप्तकालीन मृण्मूर्ति-भण्डार पवाया पर प्राप्त हुआ है वह सौन्दर्य एवं कला की दृष्टि से अद्वितीय है। इनको देखकर उन कारीगरों के चातुर्य पर आश्चर्य होता है जो मृत्तिका जैसे माध्यम से इतनी सुन्दर तथा भावपूर्ण मूर्तियों का निर्माण करते थे।

ये मृण्मूर्तियां विभिन्न प्रकार केशविन्यास वाली स्त्रियों की हैं, पुरुषों की हैं, देवी देवताओं की हैं तथा पशु पक्षियों की भी हैं। इन सब का अंकन अत्यन्त मनोहर हुआ है।

मानव मूर्तियों की विशेषता यह है कि कुछ मूर्तियाँ हंसती हुई बताई गई हैं और कुछ रोती हुई। इस प्रकार मिट्टी के ठीकरों द्वारा भाव-प्रदर्शन का यह प्रयास अत्यन्त सफल तो है ही साथ ही आश्चर्यजनक भी है। स्त्रियों की कुछ मूर्तियाँ तो अत्यन्त मनोहारी हैं।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, गुप्त कालीन कलाकार अपने समकालीन सामाजिक प्रथा के अनुरूप स्त्रियों के केशविन्यास के अंकन में अत्यंत पटु था और दो ऐसे सिर खोज निकालना कठिन ही है जिनका केशविन्यास समान हो। प्रसाधन कला इस काल में अत्यधिक विकासित हो चुकी थी। राजघाट (काशी) तथा अफगानिस्तान के प्राचीन 'कपिसा' के स्थान पर इसी प्रकार की विविध एवं मनोहर केशकलाप युक्त गुप्त कालीन मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। अपनी पुस्तक 'सोवियत भूमि' में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है —'एक जगह (काबुल के संग्रहालय में) पचासों स्त्री मूर्तियों के सिर रखे थे। उनमें पचासों प्रकार के केशों को सजाया गया था और कुछ सजाने के ढंग तो इतने आकर्षक और बारीक थे कि मोशियो मोनिए (फ्रान्स राजदूत) कह रहे थे कि इनके चरणों में बैठकर पेरिस की सुन्दरियां भी बालों का फैशन सीखने के लिये बड़े उल्लास से से तयार होंगी" पवाया की ये मृण्मयी

रमणिया कपिशा की मूर्तियों से अधिक ही सुन्दर है।

इन मृण्मूर्तियों में एक चतुर्भुज ब्रह्मा की मूर्ति है तथा एक देवी (पार्वती) की मूर्ति का भी अधोभाग मिला है।

सवार युक्त तथा बिना सवार की अत्यन्त सुन्दर अश्व-मूर्तियाँ भी इसमें हैं। बहुधा भारतीय कारीगर के प्रति यह आक्षेप किया जाता है कि वह हाथी का अंकन करने में तो अत्यन्त पटु है, परन्तु अश्व का अंकन कुशलता पूर्वक नहीं कर सकता। इसका उत्तर ये मिट्टी के घोड़े हैं। इनका निर्माण अत्यन्त कुशलता पूर्वक हुआ है।

कीर, कपोत, मयूर, मछली, वराह आदि पशु पक्षियों की बहुत सी मृण्मूर्तियाँ यहाँ मिली हैं। गले में माला डाले हुए वानर की मूर्ति अत्यन्त विनोद पूर्ण है।

ये मृण्मूर्तियाँ एक फुट लम्बी चौड़ी से लेकर एक दो इंच तक की प्राप्त हुई हैं। उनके ऊपर रंग भी होंगे, परन्तु आज वे धुल चुके हैं।



मध्यकालीन पद्मावती

खजुराहो के शिलालेख में भूतकालीन क्रिया का प्रयोग किया गया है। संभव है ईसवी सन १००० के लगभग पद्मावती का प्राचीन वैभव लुप्त होने लगा हो। वैसे मौखरियों का प्रधान केन्द्र कान्यकुब्ज था। मौखरी यशोवर्मन के राजकवि भवभूति के समय में पद्मावती वैभव-शालिनी थी यह ऊपर प्रकट हो चुका है। यशोवर्मन के उत्तराधिकारियों के हाथों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे अपने साम्राज्य को सुरक्षित रख सकते। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होते ही अनेक छोटी मोटी शक्तियां आगे आने का प्रयास करती रहीं। इनमें से एक या अनेक इस प्रदेश को रौंदती रहीं। प्रतिहारवंश के मिहिरभोज ने फिर साम्राज्य स्थापित किया जिसमें यह प्रदेश भी सम्मिलित था। प्रतिहारों का इस प्रदेश में मुख्य केन्द्र ग्वालियर गढ़ था अतएव पद्मावती उपेक्षित हो रही होगी।

मध्यकालीन राजपूतों के समय में ग्वालियर गढ़ और नरवर गढ महत्व पाते रहे और पद्मावती उपेक्षित रही। फिर भी जनश्रुति इसका सम्बन्ध परमार राजपूतों से भी स्थापित करती है। पुण्यपाल और धन्यपाल किसी परमार शाखा के शासकों के नाम होंगे जिनकी कथाएं पवाया में सुनने को मिल जाती हैं। चन्देल वीर मलखान के नाम पर एक पहाड़ी का नाम मलखान पहाडिया रख दिया गया है। धूमेश्वर मंदिर के पास पृथ्वीराज चौहान का भी चबूतरा बना हुआ है, परन्तु यह सब जन श्रुति मात्र है।

तँवरों के समय में लोदियों द्वारा पवाया के सिकन्दराबाद नाम रखने के प्रयास का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। तंवरों को जीतने का लोदियों का प्रयास पवाया के किले द्वारा संभव हुआ परन्तु उनके स्थानीय शासक सफदरखां का पद्मावती का नाम बदलने का प्रयास सफल नहीं हुआ।

पद्मावती के निकट ही प्रसिद्ध बुंदेलवीर श्री वीरसिंहदेव निर्मित धूमेश्वर महादेव का मंदिर है। बुंदेल शैली का यह अत्यंत सुन्दर शिव मन्दिर है। महाराज वीरसिंह देव ने बुन्देलखण्ड में अनेक निर्माण किये हैं। जनश्रुति यह है कि इन्होंने एक ही दिन में ५२ तालाबों, बावड़ियों और महलों की नींव रखी। दतिया का इनका सतखण्डा महल स्थापत्य कला का अद्भुत उदाहरण है। दिनारा (लेखक की जन्म भूमि) पर इनके द्वारा बनवाया गया तालाब तथा उसके प्रहरी के रूप में खड़ा दिनारा गढ़ इनके बाँध निर्माण की चातुरी के अनुपम उदाहरण हैं। दिनारा तालाब के शिलालेख में लिखा है कि यवन मित्र सलीम (मुगल सम्राट जहाँगीर) की यादगार में महाराज वीरसिंहदेव बुंदेला ने यह तालाब संवत १६ ५ विक्रमी में बनवाया। इसी समय पवाया का धूमेश्वर मंदिर बना होगा।

पवाया इसी धूमेश्वर मंदिर के कारण धूम पवाया भी कहलाती है और पद्मावती के नाम की ध्वनि में इसे गाने वाले पदम पवाया भी कहते हैं। कब और कैसे पद्मावती नष्ट-भ्रष्ट होगई और केवल पवाया धूम पवाया और पदम पवाया रह गई जिन नामों के साथ बुंदेलखण्ड के तीन घटक बुन्देला राजपूत, गमोई वैश्य और भार्गव ब्राह्मण के नाम जनश्रुति ने गूंथ दिये और फिर बुन्देला राजपूत भी जनश्रुति ने भुला कर केवल गमोई वैश्य और भार्गव ब्राह्मण ही शेष रहने दिये, यह कहानी कराल काल के गर्भ में दबी पड़ी है, दबी पड़ी रहेगी, जब तक कि भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के प्रेमी इस भूमि के उत्खनन एवं अन्वेषण का कार्य अपने राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में करवाने की सुबुद्धि प्राप्त न करेंगे। वह दिन शीघ्र आए यह हमारी कामना है।

बाघ

प्रारंभिक

मध्यभारत के धार जिले में स्थित बाग गुहाएँ भारतीय राजनीतिक एवं कला के इतिहास में विशेष महत्त्व रखती हैं। यह गुहाएँ विन्ध्य पर्वत श्रेणी के एक रेतीले पत्थर के पर्वत पर नर्मदा की एक सहायक बाघ या बाग नदी के किनारे स्थित है। आस पास का क्षेत्र पहाड़ियों और हुहावने वनों से घिरा हुआ है। पास में ही बाग नामक कस्बा है और इनके कारण ही इन इतिहास प्रसिद्ध गुहाओं को बाग-गुहा के नाम से सबोधित किया जाता है।

इस बाग कस्बे के दक्षिण-पश्चिम की ओर किसी प्राचीन नगर के अवशेषों की नीवें हैं जिनका सम्बन्ध जनश्रुति मोरध्वज राजा से स्थापित करती है। बाग के पास ऐतिहासिक महत्त्व की सप्त मातृकाओं की ये मूर्तियाँ हैं जो ईसवी पाँचवी या छठी शताब्दी की हैं। इस बाग कस्बे के पूर्व की ओर आधी मील पर कुछ गुहाओं के अवशेष हैं जिन्हें गिरि शृंगों में से काट कर बनाने का प्रयास अधूरा ही छोड़ दिया गया और फिर वे प्रख्यात गुहाएँ बनाई गई जो आज इस स्थल को महत्त्व प्रदान करती हैं।

पास में ही महाकालेश्वर महादेव का ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी का मदिर है। इस कस्बे म सवत् १२१० की तिथि युक्त एक ब्रह्मा की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिस पर यशोधवल परमार नामक शासक का उल्लेख है।

मुसलमानी शासन में निर्मित सभवत सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी का किला बाग कस्बे के पास ही बना हुआ है।

बागेश्वरी देवी का मदिर आधुनिक है और सभावना यह है कि किसी प्राचीन मदिर का जीर्णोद्धार कर इसे बनाया गया है। बाघेश्वरी

देवी. बाघ नदी और बाघ कस्बा इन तीनों के पास हैं वे बाघ गुहाएँ जो भारतीय इतिहास और कला के विद्यार्थियों के लिए सदा ही राष्ट्रीय धरोहर एवं तीर्थ के रूप में समादृत हैं और रहेंगी।

कलायन-विहार

मध्यभारत के धार जिले के बाघ या बाग नामक ग्राम के पास से इसी नाम की एक नदी बहती है। इस नदी के किनारे अत्यंत सुरम्य वातावरण में चट्टानें खोद कर बनाई गईं भित्ति चित्रों के कारण संसार-प्रख्यात वे बौद्ध गुहाएँ हैं जो उक्त नदी के कारण आज सर्वत्र 'बाग' गुहाएं कहलाती हैं। परन्तु बाग ग्राम के लोग इन्हें 'पाण्डवों की गुफा' कहते हैं। वास्तव में मूल नाम न तो 'पाण्डवों की गुफा' है और न बाग गुहा।

यहां पर स्थित एक आधुनिक देवी-मंदिर का नाम 'बाघेश्वरी देवी का मंदिर' है परन्तु वह आधुनिक है और 'बाघेश्वरी' से 'बाघ' ग्राम, नदी एवं गुहाओं ने नाम नहीं ग्रहण किया, उलटा बाघ ग्राम के देवी भक्तों की अधिष्ठात्री तथा उनके द्वारा प्रतिष्ठापित होने के कारण इस देवी को 'बाघेश्वरी' नाम प्राप्त हुआ है।

फिर बाग नदी के किनारे स्थित इस बौद्ध-विहार का मूल नाम क्या था, यह जिज्ञासा बहुत स्वाभाविक है। यह प्रश्न यद्यपि अत्यंत कौतूहल वर्धक एवं मनोरंजक है, परन्तु इसका उत्तर सरल नहीं है, और वह साध्य भी न होता यदि इन गुहाओं के जीर्णोद्धार तथा सफाई के समय सन् १९२९ में पुरातत्त्व विभाग के मिस्त्री की दृष्टि उस ताम्रपत्र पर न पड़ती जो अब गुजरी-महल में स्थित पुरातत्त्व विभाग के संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है। इसका संक्षिप्त विवरण सन १९२९ की पुरातत्त्व विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में दिया गया है। परंतु उसका सम्पूर्ण पाठ गत सोलह वर्षों में भी सामने न आने से इस महत्त्वपूर्ण बौद्ध विहार विषयक अनेक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

इस ताम्रपत्र का सम्पूर्ण पाठ जो स्वर्गीय श्री मा० बा० गर्दे ने पढ़ा है नीचे दिया जाता है —

पाठ*

(पंक्ति १) ॐ [स्वस्ति] माहिष्मतीनग[रान्म]हा[रा]जसुबन्धुः कुशली दासिलकपल्लीप-

(पंक्ति २) ....[न]वक दित्योद्ग्राहकायुक्तकविनियुक्तक-

(पंक्ति ३) चाटभटकाष्ठिकगमागमकदूतप्रेषणिकादीन्ग्रामप्रतिवा-

(पंक्ति ४) सिनश्च समाज्ञापयति विदितमस्तु वः(वो यथैष ग्रामो-मया दत्त-

(पंक्ति ५) ककारितकलयनविहारे मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याप्यायना-र्थमाचन्द्रा-

(पंक्ति ६) र्कार्णवप्रतिक्षितिस्थितिसमकालीनः(नो) भगवतो बुद्धाय (बुद्धस्य) गन्धधूप-

(पंक्ति ७) माल्यवलिसत्रोपयोज्यः (ज्यो) भग्नस्फु (स्फु) टितसंस्कार-णार्थमार्य्यभिक्षुसङ्घस्य-

(पंक्ति ८) चातुर्दिशाभ्यागतकस्य चीवरपिण्डपातग्लानप्रत्ययशे (श) य्यासनभै-

(पंक्ति ९) षज्यहेतोराग्रहारस्सोद्रङ्गस्सोपरिकरः(रो) भूमिच्छिद्रन्यायेनाग्रहारो-

(पंक्ति १०) तिसृष्ट(ष्टो) विदित्वाद्यदिवसादारभ्यास्मदीयैरेष्य (रन्य) विषयपतिभिश्च--

(पंक्ति ११) प्रि(प्री) त्यास्मत्प्रीत्या च भिक्षवो भुञ्जन्तो न व्यासेद्धव्याः षष्ठिवर्ष[सहस्राणि]

इस ताम्रपत्र में माहिष्मती के महाराज सुबन्धु द्वारा भगवान् बुद्ध-के 'गन्धधूप माल्यावलि सत्र' की योजना के लिए 'भग्न स्फुटित' के संस्करण के लिए एवं 'आर्य भिक्षु संघ के चारों दिशा से आकर ठहरने पर उनके 'चीवर पिण्ड पातग्लान प्रत्यय शय्यासन भषज्य के हेतु 'दासिलक पल्ली' नामक ग्राम का दान दिया गया है। इस ताम्रपत्र की चौथी और पाचवी पंक्ति से यह ज्ञात होता है कि यह दान 'दत्तटक कारित कलयन विहार' को अर्थात् 'दत्तटक' द्वारा बनवाए हुए 'कलयन' नामक विहार को दिया गया है।

बाघ में स्थित गुहाओं के बनवाने वाला यह 'दत्तटक' कौन है, यह संभवत कभी ज्ञात न हो सकेगा। यह है व्यक्ति का ही नाम, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है। 'दत्तभट्ट' 'दत्तदेवी' 'वाकाटक' आदि की तरह 'दत्तटक' भी व्यक्तिवाचक संज्ञा हो सकती है। यह दत्तटक कोई राजा, सामन्त या माण्डलिक नहीं था, ऐसा तो उसके नाम क उल्लेख की रीति से ही प्रकट है। उसके नाम के साथ कोई उपाधि, विरुद अथवा सम्मानसूचक शब्द नहीं है अतएव यह कोई साधारण बौद्ध गृहस्थ या भिक्षु ही होगा। आज इस धर्मप्राण व्यक्ति के विषय में कुछ अधिक जानने का साधन हमारे पास नहीं है।

परन्तु यह बात तो सिद्ध होती ही है कि इस विहार का नाम 'कलयन विहार' था। इस कलयन का सम्बन्ध किस वस्तु से है यह भी नहीं कहा जा सकता। सम्भव है इसकी 'कला' से विमुग्ध होकर इसके निर्माता ने इसका नाम 'कलायन (कला+अयन) विहार' रख दिया हो तथा ताम्रपत्र के उत्कीर्णक ने उसे गलती से 'कलयन' लिख दिया हो। एक दो अशुद्धियां इसमें हैं भी। परन्तु 'कलयन विहार' नाम लिखने में उत्कीर्णक की गलती मानकर चलना पूर्ण समीचीन भी नहीं है।

यह ताम्रपत्र दो नम्बर की गुहा के पास की एक कोठरी में मिला है। इससे एक शंका हो सकती है कि 'कलयन विहार' केवल दूसरे नम्बर

की गुहा का ही नाम हो। इस गुहा की प्रधान कोठरी में स्तूप भी है और इसके अलिन्द में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की विशाल प्रतिमाएँ भी हैं। सम्भव है इसी एक गुहा (नं० २) को 'दत्तटक' ने बनवाया हो। यदि शुद्ध रूप 'कलायन' माना जाए तब तो यह नाम सम्पूर्ण गुहाओं के लिए ही होगा, क्योंकि वास्तविक कला तो ३, ४ और ५ नम्बर की गुहाओं में है। अतएव 'कलयन' नाम सम्पूर्ण गुहाओं युक्त विहार के लिए तथा 'दत्तटक' को सब गुहाओं का बनवाने वाला, उक्त शंका के अधीन ही मानना पड़ेगा। एक बात निश्चित हो गई है कि उस विहार का कोई नाम था अवश्य। इसी प्रकार के नाम अजण्टा आदि स्थानों पर स्थित विहारों के भी होंगे जिनके प्रमाण संभव हैं भविष्य में प्राप्त हो सकें और यह भी संभव है कि वे कभी भी जाने ही न जा सकें। ऐसी दशा में 'कल(ा)यन- विहार' के नाम की जानकारी विशेष महत्व रखती है।

इस विहार को दिया गया ग्राम 'दासिलकपल्ली' भी इस विहार के आसपास ही कहीं स्थित होगा। परन्तु आज पन्द्रह सोलह सौ वर्ष पश्चात भी उक्त ग्राम की प्राचीन स्थिति पर कोई बस्ती शेष होगी और आज उसका नाम क्या होगा इसकी कल्पना कर सकना भी असंभव है।



बाघ गुहा समूह का निर्माण काल

बाग गुहाओं के निर्माण काल के विषय में विद्वानों में बहुत ऊहापोह हुई है। अधिकतर विद्वानों ने इसे ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी का बतलाने का प्रयास किया है। इसके मूल में एक प्रवृत्ति रही है। अजण्टा की चित्रकला का प्रचार भारत में तथा यूरोप में बहुत अधिक हुआ और उसे अधिक श्रेष्ठ भी माना गया है। बाग की चित्रकला की जानकारी आज भी समुचित रूप से लोगों में नहीं है यहां तक कि बाग के कुछ सुन्दरतम चित्र तो अब तक प्रकाशित भी नहीं हुए। यही कारण है कि विद्वानों में इसे अजण्टा के बाद की तिथि देने की मनोवृत्ति जड़ पकड़ गई।

परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि न तो बाग की कला कृतियाँ अजण्टा के बाद की ही हैं और न श्रेष्ठता में किसी प्रकार कम हैं, परिमाण में कम अवश्य हैं। यहाँ हम केवल इनके निर्माण काल पर ही प्रकाश डालेंगे।

इनके निर्माण काल के विषय में विंसेण्ट स्मिथ ने लिखा है "अनेक पुरुष आकृतियों के केश-विन्यास तथा पारदर्शी चुस्त वस्त्र मूर्तियों को मध्यकाल की अपेक्षा पिछले गुप्त काल से सम्बद्ध करते हैं। चित्रों की तरह व्यापक विशेषता को देखते हुए यह निश्चित है कि वे अजण्टा के पिछले चित्रों के पूर्वकालीन नहीं हैं।" (ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया एण्ड सीलोन, पृष्ठ १०६) इस प्रकार इस विद्वान् ने बाग के चित्रों और मूर्तियों की कला का परीक्षण करके दो स्थापनाएं कीं। पहली यह कि बाग गुहा के चित्र और मूर्तियों का निर्माण पिछले गुप्त काल में हुआ था तथा ये अजण्टा की कला कृतियों के बाद की हैं।

भारत कला भवन काशी के अध्यक्ष राय कृष्णदास ने इनकी तिथि पर स्पष्ट प्रकाश तो नहीं डाला है परन्तु बाग के चित्रों को पूर्व मध्यकाल

(६००-९०० व १००० ई०) में बना माना है। (भारत की चित्रकला, पृष्ठ ६८)

आनन्द कुमार स्वामी ने अवश्य ही इन गुहाओं को ५०० ई० के लगभग का माना है।

काल के उपरोक्त अनुमान चित्रों और मूर्तियों की शैली को देखकर हुए हैं। परन्तु शैलियों के आधार पर किए गए अनुमान वास्तविक तिथि के सौ दो सौ वर्ष पश्चात तक भी जा सकते हैं और पूर्व भी। ऊपर लिखी मनोवृत्ति के कारण यह काल बाद का अनुमान करने की ही प्रवृत्ति रही है।

बाग के चित्रों पर अंकित (संभवत. किसी दृश्य का वर्णन करने के लिए) एक लेख के चिन्ह भी मिले हैं। परन्तु वह पूर्णतः नष्ट होगया है, केवल एक अक्षर 'क' शेष रह गया है। यह अक्षर गुप्त लिपि में है और लिपि विज्ञान के सहारे ग्वालियर पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर श्री गर्दे महोदय ने इस अक्षर को लगभग छठी या सातवीं शताब्दी ईसवी का माना है। निश्चय ही गर्दे महोदय पर उपरोक्त विद्वानों की सम्मति का प्रभाव पड़ा है। साथ ही चित्र और मूर्तियों की शैली के समान अक्षर की आकृति भी मूल तिथि में सौ दो सौ वर्ष आगे पीछे का अनुमान करा सकती है।

बौद्ध धर्म उत्तर भारत से चलकर दक्षिण की ओर गया। बाग और अजण्टा दोनों ही बौद्ध भिक्षुओं की प्रवृत्तियाँ हैं। अतः प्राकृतिक अनुमान यह है कि नर्मदा के उत्तर में स्थित बाग की बौद्ध गुहाओं का निर्माण पहिले हुआ होगा, उसके पश्चात ही अजण्टा की कला कृतियां बनी होंगी। परन्तु जहां तक चित्रकला का सम्बन्ध है, बाग की चट्टानें विलयनशील होने के कारण चित्र परिमाण में बहुत कम रह गई हैं. परन्तु वे श्रेष्ठता में कम हैं यह तो वहां की उपलब्ध पूर्ण सामग्री से अपरिचय के कारण ही कहा जाता है।

जो हो, परन्तु अनेक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित होने के कारण ऊपर लिखी धारणा को मिटाना असम्भव होता यदि सौभाग्य से बाग गुहा में महाराज सुबन्धु के ताम्रपत्र की प्राप्ति न हो जाती। इस ताम्रपत्र द्वारा माहिष्मती नगर के महाराज सुबन्धु ने दासिलकपल्ली नामक एक ग्राम इस 'दत्तटक कारित कलय। विहार' में बुद्ध भगवान की पूजा अर्चा आदि के लिये दान दिया है। दुर्भाग्य से ताम्रपत्र का एक कोना टूट गया है और सवत अक नष्ट हो गये हैं, केवल श्रावण मास शेष रह गया है। परन्तु माहिष्मती के इन महाराज सुबन्धु की तिथि बडवानी में प्राप्त एक दूसरे ताम्रपत्र से ज्ञात होती है। बडवानी बाग से १५।१६ मील पर ही स्थित है, अत इन दोनों ताम्रपत्रों के 'माहिष्मती नगर के महाराज सुबन्धु' एक ही होंगे, ऐसा निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है। इन दोनों ताम्रपत्रों की लिपि भी समान है। बड़वानी के ताम्रपत्र पर सवत १६७ भाद्रपद सप्तमी तिथि दी हुई है।

सुबन्धु को 'महाराज' कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि वह माण्डलिक नरेश था। यदि १६७ गुप्त सवत् माना जाये तो सुब धु बुध गुप्त के अधीन रहा होगा। गुप्त साम्राज्य का प्रसार नर्मदा तक उस समय भी था। इस प्रकार इस ताम्रपत्र से यह सिद्ध है कि यह कलयन विहार गुप्त सवत १६७ अथात् ईसवी सन् ४८६ के लगभग विद्यमान था और तब तक इस दशा को प्राप्त हो चुका था कि महाराज सुबन्धु को उसमें चारों दिशाओं से आगत होने वाले भिक्षुओं के ' चीवर पिण्ड ' आदि के लिये व्यवस्था करने की आवश्यकता पडी।

इस ताम्रपत्र के आधार पर श्री गर्दे ने यह माना कि ' अब तक स्थापत्य एव मूर्तियों की शैली के आधार पर इन गुहाओं (बाग) को लगभग सातवीं शताब्दी ईसवी का माना जाता था परन्तु अब एक ताम्रपत्र (सुबन्धु का उक्त ताम्रपत्र) की प्राप्ति इसमें से कम से कम कुछ की तिथि को पाचवीं शताब्दी तक ले जाती है।" (आर्कोलोजी इन ग्वालियर, पृष्ठ ६२ ६३)। आगे सुबन्धु के इस ताम्रपत्र का सपादन करते

हुए श्री गर्दे ने लिखा है, "प्रस्तुत अभिलेख से यह सिद्ध हो जाता है कि यहां की कुछ गुहाएं तो ईसवी सन की पांचवी शताब्दी के बाद की नहीं हो सकती। (विक्रम स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ ६५०)"

महामहोपाध्याय श्री वासुदेव विष्णु मिराशी ने सुबन्धु के ताम्रपत्रों पर कलचुरि संवत माना है।

जिस विहार को गुप्त अथवा कलचुरि संवत १६७ (ई० स० ४८६ या ४१६) के लगभग इतना बड़ा दान दिया गया हो वह कम से कम एक शताब्दी पूर्व तो बना होगा। यह अनुमान इस बात से भी सिद्ध होता है कि यह विहार मूलतः किसी सम्राट या माण्डलिक का बनवाया हुआ न होकर साधारण नागरिकों का बनवाया हुआ था, अतएव इसकी उन्नति क्रमशः ही हुई होगी। इस विहार को जिस 'दत्तटक' द्वारा बनवाया उक्त ताम्रपत्र में कहा गया है उसके नाम के साथ कोई पदवी या सम्मान सूचक शब्द नहीं है। इस प्रकार इस विहार का कम से कम यहां की कुछ गुहाओं का, निर्माण काल प्राप्त सामग्री द्वारा चौथी शताब्दी के प्रारंभ तक माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध मूर्ति विज्ञान का विकास क्रम भी इस स्थापना की पुष्टि करता है। ईसवी सन के प्रारम्भ के पूर्व बुद्ध का अंकन प्रतीकों द्वारा किया जाता था। स्तूप बोधि-वृक्ष, त्रिरत्न, सिंहासन यही बुद्ध के विभिन्न रूपों के प्रतीक थे और इनका ही पूजन होता था। आगे चलकर ई०स० की प्रथम शताब्दि के लगभग बुद्ध मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। गुप्त काल तक बौद्ध विहारों एवं मन्दिरों में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का पूजन प्रारम्भ हो गया और स्तूप आदि के स्थान पर उनकी स्थापना होने लगी। यह परिवर्तन केवल चैत्यों में ही नहीं हुआ जो कि स्तूप की पूजा के लिए ही बनाए जाते थे वरन बौद्ध भिक्षुओं के आ-वासगृह "विहारों" में भी हुआ। चैत्य गुहाओं में स्तूप के स्थान पर

बुद्ध मूर्ति की स्थापना हुई और विहारों में जहाँ गन्ध कुटी नामक प्रधान स्थल में स्तूप रहा करता था वहां भी बुद्ध की प्रतिमा रखी जाने लगी।

बाग की गुहा क्रमांक १ बौद्ध भिक्षुओं का आवास स्थल विहार है। इसकी "*गन्धकुटी*" में मध्य में बौद्ध स्तूप है और उसके दोनों ओर बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियां हैं। इनकी तुलना नासिक की गुहाओं से करने पर ज्ञात होता है कि नासिक गुहाओं में केवल स्तूप को पूजनीय स्थान पर स्थापित किया गया है और बाग गुहा में स्तूप के साथ साथ बौद्ध प्रतिमाएँ भी आ गई हैं, परन्तु उनको स्तूप के समान प्रधानता प्राप्त नहीं हो सकी है। दूसरी ओर यदि उनकी तुलना अजण्टा के गुप्त कालीन विहारों से की जाय तो प्रगट होगा कि अजण्टा में स्तूप का स्थान बुद्ध मूर्ति पूर्णत ले चुकी है। इस प्रकार बाग की यह गुहा नासिक और गुप्त कालीन अजण्टा के बीच की कड़ी है और इस प्रकार इसका निर्माण काल नासिक की गुहा के पश्चात तथा अजण्टा की गुप्त कालीन गुहा के पूर्व का सिद्ध होता है।

इस सम्बन्ध में भारतीय मूर्तिकला के दो अभिप्राय गंगा और यमुना का विकास क्रम भी बाग गुहा के गुप्त पूर्व होने की स्थापना की पुष्टि करता है। ई० स० के पूर्व निर्मित साँची के द्वारों पर तोरण शालिभंजिकाये बनी हुई हैं। इनका उपयोग नीचे की बड़ेरी के ताड़े के रूप में सहारा देने का तो है ही, साथ ही यह स्त्रिये शालभंजिकायें भरहुत की यक्षियों के ही एक रूप हैं। टोडा के रूप में स्थापत्य सम्बन्धी, द्वार की पवित्रता की रक्षिका में धार्मिक एवं अत्यन्त सौंदर्यमयी होने के कारण कला सम्बन्धी इन तोरण शालिभंजिकाओं का उपयोग है। यह अभिप्राय आगे भारतीय शिल्पियों को इतना मनोहर ज्ञात हुआ कि आगे के शैलोत्कीर्ण बौद्ध विहारों के द्वारों में भी इनका उपयोग हुआ। बाग की गुहा के द्वार के ऊपर दोनों ओर वृक्ष के नीचे बंकिम भंगिमा में खड़ी मकरवाहिनी देवियां बनी हुई है। बौद्ध विहार की यह देवियाँ हिन्दुओं की गंगा नहीं हो सकती, वास्तव में यह साँची की तोरण शालिभंजिकायें

के ही रूप हैं। इनका अन्न बडेरियों की टोडी के रूप में स्थापत्य सम्बन्धी उपयोग नहीं रहा। केवल धार्मिक और कलात्मक उपयोग के कारण ही इस विहार के द्वार पर यह मकर वाहिनी देवियाँ बनी हुई हैं।

आगे चलकर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में साँची के पास ही जब उदयगिरि में हमें मन्दिर द्वार के ऊपर की ओर यही देवी मिलती है, तब यह अनुमान होता है कि हिन्दू मन्दिरों के शिल्पियों ने भी इस बौद्ध अभिप्राय को हिन्दू गंगा में अनुवादित करके शिव मन्दिर की पवित्रता की रक्षिका रूप में अपना लिया। गुप्तकालीन उत्कीर्णकों के मस्तिष्क में गंगा यमुना की जोड़ी थी अवश्य जैसा कि उदयगिरि में ही बने गंगा-यमुना के अंकन से सिद्ध है, परन्तु मन्दिर स्थापत्य में अभी उसकी दृष्टि के सम्मुख सांची एवं बाग की शालिभंजकाएं ही थीं और उन्हीं के अनुकरण में उसी मन्दिर द्वार के दोनों ओर मकर-वाहिनी देवी की मूर्ति अंकित कर दी। आगे चलकर यह देवियां मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्मवाहिनी यमुना बनकर मन्दिर द्वार पर आ विराजीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाग की यह द्वारस्थ देवियां सांची की शालिभंजिकाएं एवं गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में बने मन्दिरों की गंगा के बीच की कड़ी है, जिनका निर्माण देर से देर चौथी शताब्दि के प्रारम्भ में हुआ।

अब चित्रकला पर भी थोड़ासा दृष्टिपात कर लिया जाय। अजण्टा के गुप्त कालीन चित्रों का आधार जातक कथाएं हैं। बाग के चित्रों में अंकित दृश्य किसी जातक कथा का अंकन न करते हुए केवल बुद्ध बोधिसत्व एवं उनकी पूजा में आन्दोत्सव मनाने वाले समाज के अंकन हैं। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि रूढ़ि एवं रीतियों से बंधी कला के पूर्ण स्वतन्त्र एवं पूर्ण यथार्थ अंकन प्रधान कला का निर्माण होता है।

इस प्रकार अभिलेख, स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला सम्बन्धी सामग्री पर विचार करने से यह पूर्ण रूप सिद्ध होता है कि बाग गुहाओं में से अनेक का निर्माण ईसवी चौथी शताब्दि के प्रारम्भ हो चुका था।



गीत—नृत्य ८६५, पवाया (पृष्ठ,६०)



बाघ गुहा के बोधिसत्व का चित्र (पृष्ठ ८२)



बाघ-बोधिसत्व (पृष्ठ ८२)

बाघ गुहा चित्रों में प्रकृति

भारतीय संस्कृति का विकास प्रकृति की गोद में हुआ है। भारत का दर्शन अरण्यों की देन है। जहाँ ऋषि मुनियों ने वनो में आश्रम बनाए वहा राजा, राजकुमार एवं राज कन्याओं ने प्रकृति की गोद में क्रीड़ा की, वहा के आश्रम वासियों का शिष्यत्व किया और अन्त में चौथेपन में उन्हें मोक्ष का साधन बनाया। हमारी कला भी प्रकृति के उपकरणों से अलंकारिक अभिप्राय लेती रही है।

राजकुमार सिद्धार्थ के प्राण संसार के पाप संताप की पीड़ा से व्यथित हुए। वे उनको दूर करने के लिये मार्ग ढूंढने के लिये कटिबद्ध हुए। प्रासादों की चहारदीवारी के भीतर जो कुछ भी सुख सामग्री एकत्रित की जा सकती थी वह उनके पिता ने एकत्रित की थी परन्तु पर दुख कातर गौतम को तपोवन की पुकार बड़े वेग से सुनाई दी। उन्होंने प्रकृति की प्रशान्त गोद में बैठकर संसार के उद्धार का साधन खोजने का यत्न किया। परिणाम यह हुआ कि बोधिवृक्ष की छाया ने बौद्ध कला को प्रकृति की शीतलता से आवृत कर लिया।

बाघ और अजण्टा दो ऐसे नाम हैं जो बौद्ध धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान तो रखते ही हैं साथ ही प्राचीन चित्रकला के इतिहास में भारतीय कला को बहुत श्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हैं। अभीतक विद्वान लोग बाघ के चित्रों को अजण्टा का परचातवर्ती मानते रहे परन्तु अब यह पूर्णत सिद्ध हो चुका है कि बाघ गुहा के चित्र अजण्टा के प्रसिद्ध चित्रों के पूर्व के हैं।

बाघ गुहा मडप के निर्माता प्राकृतिक सौंदर्य के कितने अधिक प्रेमी थे यह बाघ की एक बार की यात्रा से ही स्पष्ट हो जाता है। इन गुहाओं को बनाने के लिये जो चट्टान चुनी गई है वह गुहा मडप बनाने के लिये आदर्श न थी परन्तु वह अत्यन्त सुरम्य प्राकृतिक वातावरण के मध्य में

स्थित है। इनके निर्माता को इस रमणीक वातावरण ने ही मोह लिया दिखता है। बाघ नदी की प्रवहमान मुखरित धारा की मर्मर ध्वनि उसे साधना के मंत्र पाठ से स्वर मिलाती हुई ज्ञात हुई और चारों ओर का प्रकृति सौन्दर्य वैभव मानव को साधारण से असाधारण की ओर, लौकिक से अलौकिक की ओर तथा मर्त्य से अमर्त्य की ओर आकर्षित करता हुआ ज्ञात हुआ।

निर्माणकाल के पूर्ववर्ती होने के कारण ही नहीं, वरन अन्य बातों में भी बाघ कला अजण्टा से विशिष्ट है। अजण्टा के चित्रकार ने अपने आपको जातक कथाओं के अंकन में बांध लिया था, परन्तु बाघ गुहाओं का कलाकार किसी कथा में सीमित नहीं था। अपनी रुचि के अनुसार उसने बुद्ध, बोधिसत्व, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक आदि का अंकन किया। धार्मिक विवाद की गंभीरता, शोकजन्य करुणा, आनन्दातिरेक के कारण उन्मादकारी नृत्य गीत, भक्ति आदि मनोभावों के अंकन के साथ जिस वस्तु की विशेषता है वह है इन सब दृश्यों में प्रकृति का उपयोग। अजण्टा अथवा अन्य गुहा चित्रों में प्रकृति अन्य दृश्यों के सौंदर्य वर्धन के लिये ही आई है। बाघ गुहा चित्रों में प्रकृति एवं मानव जगत एक दूसरे का गाढ़ आलिंगन किये ज्ञात होते हैं। इतना ही नहीं, अन्य स्थलों पर प्रकृति के उपकरण मानव के वातावरण में सौन्दर्य वृद्धि के लिये लाए जाते हैं, परन्तु बाघ गुहाओं के चित्रों में यह ज्ञात होता है कि मानव स्वयं प्रकृति के प्रांगण में पहुंचा है। दो भिक्षु किसी गम्भीर चिन्तन में व्यस्त हैं, उनके हाथों और मुख मुद्रा से यह भाव प्रकट करने में चित्रकार पूर्णतः सफल हुआ है। परन्तु इस दृश्य की वास्तविक विशेषता प्रकृति चित्रण में है। इसको देखने से यह ज्ञात नहीं होता कि प्रकृति के उपकरण मानव के बीच में सजा दिये गये हैं, वरन ज्ञात यह होता है कि मानव स्वयं प्रकृति के वातावरण में जा बैठा है जिसने उसे अपने शीतल अंक में आश्रय दिया है।

अभी हाल ही में आरमेनियन चित्रकार श्री कचडोरीन ने कुछ बोधिसत्वों के चित्रों की प्रतिलिपि बाघ गुहाओं की भित्तियों पर से की है।



बाग गुहा की भित्तियों पर अंकित एक दृश्य (पृष्ठ ८३)



[illegible] और दृश्य (पृष्ठ ८३)

बाघ गुहा की भित्तियों पर अंकित दो दृश्य (पृष्ठ ८२)



मुख मंडल की करुण एवं शान्त भावना, सम्पूर्ण शरीर की सरल, ललित एवं सुकोमल भंगिमा में यह चित्र अजन्ता के प्रख्यात पद्मपाणि अवलोकितेश्वर से तुलना में इक्कीस ही उतरते हैं, इनके चारों ओर पुष्पराजि की क्रीड़ा अत्यन्त चमत्कारिक है तथा बाघ की कला की निजी विशेषता है। प्रभा मंडल, मुकुट किरीट तथा अन्य अलंकरण सभी सुकोमल पुष्पराजि से आवृत से दिखते हैं। बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रमुखता पर आघात किये बिना इन चित्रों में पुष्प एवं किसलयों की बहुलता दिखाई गई है।

चामर ग्राहिणी की कुसुम कोमल देहलता के ऊपर एक ओर चामर गुच्छ दिखाया है तो दूसरी ओर उसका सन्तुलन किया गया है उत्फुल्ल कुमुद पुष्प द्वारा। शोक के करुणामय दृश्य में भी एक कोने में कपोत युग्म बैठाकर चित्रकार ने मानव एवं पशुपक्षी जगत के सहानुभूति पूर्ण सहयोग को मूर्तरूप दिया है। कहां तक गिनाया जाय, मानव के अंकन के साथ बाघ के चित्रकार ने उसके चिर सहचर पशु, पक्षी, पुष्प, पल्लव अनायास सजा दिये हैं। मानव के उपयोगी एवं प्राचीन साथी अश्व एवं हाथी अत्यन्त सजीव एवं सुन्दर अंकित किये गये हैं।

बाघ गुफाओं में प्रकृति केवल मानव के साथ ही नहीं दिखाई गई, उसका स्वतन्त्र रूप से भी अंकित किया गया है। 'रंगमहल' नामक गुफा में तो यह संश्लिष्ट एवं स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण अपनी चरम सीमा को पहुंच गया है। यहां शीतल वनराजि के पल्लवों के बीच गाय और वृषभ की जोड़ी खड़ी कर दी है कहीं कमल एवं कुमुदनी की बेलों के बीच हंस बैठा दिये हैं और कहीं उमड़ते घुमड़ते बादलों के से दृश्य हैं। और यह सब दृश्य बड़े आत्म विश्वास, दृढ़ता एवं मनोहरता के साथ बनाए गये हैं।

अनेक स्थानों पर फूल पत्तियों के बीच कुछ अत्यन्त सुन्दर दृश्य बन गए हैं, जल पादपों के पुष्प एवं पल्लवों तथा बुद्बुदों के संश्लिष्ट एक अंकन के ध्यान से देखने पर वह एक चंचल शिशु का अंकन सा ज्ञात

होता है। बाघ का महान कलाकार सौन्दर्यमय कौतूहल के आकर्षण को समझता था और उसने उसका पूर्ण उपयोग किया है, एवं पुष्करिणी में प्रफुल्ल कमल वन के सुरम्य वातावरण में कमल पत्र जैसे सुकोमल आसन पर अत्यन्त प्रेम पूर्वक पक्षि युगल का चक्षु मिलन भूलोक पर स्वर्ग का अवतरण करने वाले अमर आकर्षण का प्रतीक है।

बाघ गुहाओं के चित्रकार ने जहाँ बुद्ध अथवा बोधिसत्व अंकन में कथाओं का सहारा नहीं लिया, वहाँ प्रकृति चित्रण में भी अप्राकृतिक अथवा अलौकिक कल्पना से वह दूर ही रहा है। बाघ गुहाओं की भित्तियों पर अजण्टा के समान आधे मानव और आधे पक्षी के शरीर वाले जीव यहाँ नहीं दिखाए गये हैं। इस प्रकार एक कल्पनामय बालक का चित्रण करते समय भी उसे सम्पूर्ण मानव रूप में ही रखा गया है।

बाघ गुहाओं के भित्तिचित्रों में प्रकृति का सजीव स्पर्श प्रत्येक स्थान पर दिखाई देता है। प्रकृति जड़ अचेतन रूप में न होकर पूर्ण संवेदनशील है। कलाकार ने उसमें शिव एवं सुन्दरम् का समन्वय किया है। पंचभूत से निर्मित उपकरणों के यह मनोरम चित्र अत्यन्त अलौकिक एवं चिरन्तन आनन्द की सृष्टि कर रहे हैं। सृष्टि के सुन्दरतम एवं सजीवतम चित्रण में कलाप्रेमी बौद्ध भिक्षुओं ने निर्वाण का मार्ग देखा। उन्ने अनुभव किया कि मरण से पीड़ित इस संसार में प्रकृति का सौन्दर्य ही चिर यौवन, अमर प्रफुल्लता एवं नित्य नवीनता से भरा हुआ है।

प्रकृति का यह मनोरम, सहृदयतापूर्ण एवं प्रचुर अंकन बाघ गुहा मंडप की निजी विशेषता है। इसमें भारतीय संस्कृति का तपोवन का आदर्श पूर्ण प्रतिष्ठा पा सका है।

———